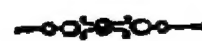
प्रकाशकः—
जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः,
चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज आफिस,
पो० बाक्स नं० ८, बनारस

The Chowkhamba Sanskrit Series Office.
P. O. Box 8, Banaras.
1954

मुद्रकः—
विद्याविलास प्रेस,
बनारस-१

विषय सूची

परिशिष्ट



॥ श्रीः ॥

विद्वद्विभूति



महामनीषी श्री उदयनाचार्य

[ईसा पश्चात् दशम शताब्दी]

तर्काश्रित उपपत्तियों का प्रयोग वेद तथा उपनिषद् साहित्य में दृष्टिगोचर होता है किन्तु शास्त्र के रूप से न्याय का प्रवर्त्तन अक्षपाद ने किया। इस न्याय-शास्त्र की पद्धति को बौद्धों ने अपनाकर अपने मतानुकूल विकास किया। आचार्य दिङ्नाग का बौद्ध न्यायाचार्यों में बहुत ऊँचा स्थान है। इन्हीं का कालिदास ने मेघदूत में 'स्थूलहस्त' तथा 'न्यायवार्त्तिक' में उद्द्योतकर ने कुतार्किक कह कर स्मरण किया है:—

यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगते जगाद।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतुः करिष्यते तस्य मया प्रबन्धः॥

(न्यायवार्त्तिक, पृ० १, बिब्लिओथिका इण्डिका सीरिज)

आचार्य दिङ्नाग का खण्डन भारद्वाज वंशीय उद्द्योतकर ने अपने ग्रंथ 'न्यायवार्त्तिक' में पर्याप्त रूप से किया। किन्तु उसके पश्चात् बौद्ध न्याय की धारा अप्रतिहत गति से दो तीन सौ वर्ष प्रवाहित हुई। अनेक बौद्धाचार्य हुये जिनके नाम तथा ग्रन्थों को तिब्बतीय साहित्य से पुनरुद्धार किया गया है।

इसका ऐतिहासिक कारण था। उत्तरकालीन गुप्तसम्राट् बौद्ध हो गये थे। उत्तरापथेश्वर शीलादित्य हर्ष भी बौद्धधर्म की ओर झुक गये थे। वङ्गदेश में 'पाल वंश' और 'चन्द्र वंश' बौद्ध थे। तात्कालिक विश्वविद्यालय नालन्दा और विक्रमशिला बौद्धपरिचालित थे। बाह्य देश सिंहल, चीन यवद्वीप के भिक्षु और सम्राटों के सम्बन्ध से बौद्धमत अत्यधिक प्रभावशाली हो रहा था।

इन परिस्थियों में बौद्धन्याय का महत्वपूर्ण खण्डन सर्वतन्त्रस्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र, जयन्तभट्ट, भासर्वज्ञ और उदयनाचार्य ने किया। उद्द्योतकर के पश्चात् तीन सौ वर्ष बाद हिन्दू न्यायशास्त्र की धारा फिर बढ़ी। वाचस्पति मिश्र पर बौद्धों के आक्षेप का उत्तर तो उदयन ने दिया ही पर साथ ही साथ अनीश्वरवादी बौद्धों के प्रतिरोध में उन्होंने तर्क के आधार पर जो ईश्वर की प्रतिष्ठा की वह उनकी अप्रतिम तार्किक निपुणता का परिचायक है।

उदयनाचार्य की तिथि के विषय में विद्वानों[1] के बीच पहले अधिक मतभेद था किन्तु उन्हीं के ग्रन्थ 'लक्षणावली'[2] के आधार पर अब वह निश्चित रूप से ९८४ ई० संवत् मान ली गई है। महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण के मतानुसार आपका जन्म मिथिला में दरभङ्गा से २० मील उत्तर में कमला नदी के तट पर [3]मगरोणि (करिऔन) गाँव में हुआ। पूर्वमध्यकालीन न्यायशास्त्र के इतिहास में मिथिला में वाचस्पति मिश्र के पश्चात् ये ही अद्वितीय धुरन्धर विद्वान् उत्पन्न हुये थे। इसका समर्थन 'भविष्यपुराण परिशिष्ट' के 'भगवद्[4]भक्ति माहात्म्य' से भी होता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि उपलब्ध 'भविष्य पुराण परिशिष्ट' का ऐतिहासिक महत्त्व कितना है।

नवम शताब्दी से बौद्ध और हिन्दू मतावलम्बी विद्वानों का संघर्ष तीव्रतर होने लगा था। ह्वेनसांग के साथ ब्राह्मणों का विवाद चीनी परम्परा से ज्ञात होता है। एतत्कालीन शिलालेख भी इसी ओर इङ्गित करते हैं। स्वयं उदयन के ग्रन्थों में यह प्रवृत्ति दृष्टि गोचर होती है। कल्याण रक्षित (८२९ ई०) और धर्मोत्तराचार्य (८४७ ई०) नामक दो बौद्धन्यायाचार्यों का खण्डन उदयन ने किया। 'ईश्वरभङ्गकारिका' में ईश्वर की असिद्धि के लिये कल्याणरक्षित द्वारा

---

१ कीथ, ज. रा. ए. सो. १९०८ पृ० ५२३

२ तर्काम्बराङ्कप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्॥ (लक्षणावली, पुष्पिका)

३ म० म० डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, हिस्ट्री आफ् इण्डियन लॉजिक, पृ० १४२

४ भूत्वा स मिथिलायान्तु शास्त्राण्यधीत्य सर्वशः ······॥

किये हुये तर्कों का खण्डन उदयन ने अपनी 'कुसुमाञ्जलि' में किया है। 'अपोह' क्षणभङ्ग, श्रुत्यप्रामाण्य इत्यादि कल्याणरक्षित द्वारा लिखित 'अन्यापोह-विचार-कारिका' 'श्रुतिप्रकाश' इत्यादि ग्रन्थों में प्रवर्तित सिद्धान्तों को उदयन ने 'आत्मतत्त्वविवेक' में ध्वस्त किया है। धर्मोत्तर के 'अपोहनामप्रकरण' और 'क्षणभङ्ग-सिद्धि' ग्रन्थों की तीक्ष्ण आलोचना भी आचार्य के उल्लिखित ग्रन्थ में प्राप्त होती है।

जनश्रुति है कि उदयनाचार्य ने अनेक वार बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया।[1] इस विषय में उपर्युक्त भविष्यपुराण परिशिष्ट में एक रोचक कथा दी हुई है। तीरभुक्ति (मिथिला) राजा की सभा में एक बौद्धाचार्य ने उदयन से अनेक वार परास्त होकर भी अपनी पराजय स्वीकार नहीं की। आचार्य ने तर्क छोड़ प्राचीन 'दिव्यों' का आश्रय लेकर प्रस्तावित किया कि एक ब्राह्मण और बौद्धाचार्य तालवृक्ष से नीचे कूदें। ब्राह्मण श्रुतिप्रामाण्य और बौद्धाचार्य श्रुति-अप्रामाण्य कहकर नीचे कूदेंगे। जो जीवित रहेगा उसीका मत सर्वमान्य होगा। ऐसा ही हुआ। ब्राह्मण जीवित रहा और बौद्धाचार्य मर गये। इस प्रकार बौद्धाचार्य परास्त तो हो गये किन्तु उदयनाचार्य को हत्या का पातक लगा। इसीलिये जब वे जगन्नाथ यात्रा को गये तो उनके लिये कपाट मुक्त न हुये। उदयन क्षुब्ध हुये और उन्होंने गर्वोक्ति की।

ऐश्वर्यमदमत्तः सन् आत्मानमवमन्यसे।
पुनर्बौद्धे समायाते मदधीना तव स्थितिः॥

यह नहीं कहा जासकता कि इस जनश्रुति में कितना ऐतिहासिक तथ्य है। जिस समय अन्य रीतियों से निश्चय न होता हो उस समय 'वाद'[2] में 'दिव्य' का

---

१ सतीशचन्द्र विद्याभूषण, बुधिज्म इन इण्डिया, (जरनल आफ् बुधिस्ट टेक्स्ट सोसायटी पार्ट १, १८९६)

२ प्रमाणहीने वादे तु निर्दोषा दैविकी क्रिया। (व्यवहारप्रकाश में उद्धृत बृहस्पति)

वेलायां दक्षिणाब्धेर्मुसलधरगदापाणि संवासवेद्यां
क्षेत्रे विश्वेश्वरस्य स्फुटदसिवरणा श्लेषगंगोर्मिभाजि।
तीरोत्संगे त्रिवेण्याः कमलभवमखारम्भनिर्व्याजपूते
येनोच्चैर्यज्ञयूपैः सह समरजयस्तम्भमालान्यधायि॥ १॥
(विश्वरूपसेन का मदनपाडा ताम्रपत्रलेख)

प्रयोग बृहस्पति ने स्वीकार किया है। इसलिये संभव है कि जिस प्रकार 'वाद' में उसी प्रकार 'विवाद' में 'अग्निधारण' 'विषशुद्धि' 'गिरिपात' इत्यादि दिव्य का प्रयोग होता रहा हो। ऊपर से नीचे कूदना भी एक दिव्य है। बौद्धों से शास्त्रार्थ भी उस समय की एक सामान्य घटना थी। उदयन का जगन्नाथ-गमन भी सम्भव था।

उड़ीसा में भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी, कोणार्क और यज्ञपुर क्रमशः शिव, विष्णु, सूर्य और शक्ति के प्राचीन तीर्थस्थान हैं। इनमें जगन्नाथपुरी के विषय में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। यह एक रहस्य ही है कि यह किस प्रकार बौद्धतीर्थ से वैष्णवतीर्थ में परिणत हुआ। किन्तु सेन वंश के राजाओं ने अपने ताम्रपत्र लेखों में इसका वर्णन काशी और प्रयाग के साथ किया है जिससे अनुमान होता है कि उनके काल में, ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी में, इसने यथेष्ट धार्मिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था। अतएव आचार्य उदयन का जगन्नाथ-गमन भी सम्भव है। जनश्रुति में कुछ अप्राकृत घटनायें रोचनार्थ तो जुड़ ही जाती हैं।

उदयन के साथ हीर पण्डित के शास्त्रार्थ की भी एक परम्परा है। हीर नैषध चरितकार श्रीहर्ष[1] के पिता थे। वे जयचन्द्र की सभा के पण्डित थे। एक विद्वान् ने उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित किया। पराजय की ग्लानि से संतप्त हीर ने मरने के पूर्व अपने पुत्र को इसके प्रतिकार की आज्ञा दी। श्रीहर्ष ने 'चिन्तामणि' मंत्र की साधना कर त्रिपुरा की उपासना से वरप्राप्त कर जयचन्द्र की सभा में उपस्थित होकर यह श्लोक पढ़ाः—

गोविन्दनन्दनतया च वपुःश्रिया च मास्मिन्नृपे कुरुत कामधियं तरुण्यः।
अस्त्रीकरोति जगतां विजये स्मरः स्त्रीरस्त्रीजनः पुनरनेन विधीयते स्त्री ॥

हे तरुणियो! इस नृप को तुम लोग कामदेव इसलिये न मान लेना कि यह गोविन्द चन्द्र गहडवाल को आनन्ददायक है और इसका शरीर सुन्दर है; यद्यपि प्रद्युम्न के रूप कामदेव भी श्रीकृष्ण के पुत्र हैं और उनका शरीर मनोहर है किन्तु संसार की जय के लिये कामदेव स्त्री अस्त्र बनाता है जब यह नृप समरक्षेत्र में पुरुष को स्त्री बना देता है।

---

१ श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।

श्लोक की व्याख्या से राजसभा प्रसन्न हुई और हीर का प्रतिवादी स्वयं विनत हो गया।

इस परम्परा में हीर के प्रतिवादी का नाम भी उपलब्ध हो गया। अहमदाबाद के समीप ढोलका ग्राम में १२९६ ई० में चाण्डु पण्डित द्वारा लिखित एक नैषधीय टीका उपलब्ध हुई है जिसमें उदयन को हीर का प्रतिवादी और 'खण्डन-खण्डखाद्य' के द्वारा श्रीहर्ष का उदयन के सिद्धान्तों का खण्डन करना बताया गया है।

यह परम्परा चिन्तनीय है। राजशेखर के प्रबन्धकोश से ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र के राजकवि थे। 'खण्डनखण्डखाद्य'[1] के श्लोक से इसकी पुष्टि होती है कि श्रीहर्ष ताम्बूलद्वय और आसन कान्यकुब्जेश्वर से प्राप्त करते थे। नैषधीयकार श्रीहर्ष ने ही 'खण्डन खण्डखाद्य'[2] लिखा क्योंकि नैषध के षष्ठ सर्ग के अंतिम श्लोक में इसका उल्लेख है। इस प्रकार कान्यकुब्जेश्वर की सभा में श्रीहर्ष का होना उनके द्वारा 'खण्डनखण्डखाद्य' का लिखना तथा उनके पिता का नाम 'हीर' होना तो प्रमाणों से सिद्ध है किन्तु 'हीर' के प्रतिवादी 'उदयन' का होना सन्दिग्ध है।

उदयनाचार्य की तिथि ९८४ ई० स्वरचित ग्रन्थ 'लक्षणावली' से ज्ञात ही है। श्री हर्ष के आश्रयदाता जयचन्द्र की तिथि यवन लेखकों के वर्णन तथा ताम्र पत्र लेखों के पुष्कल प्रमाणों से पूर्णतः ज्ञात है। जयचन्द्र के एक ताम्रपत्र लेख ११६५ ई० में उट्टङ्कित हुआ। शहाबुद्दीन गोरी के द्वारा वह ११९४ में पराजित हुआ। इस प्रकार 'हीर' और आचार्य उदयन के काल में करीब दो सौ वर्ष का अन्तर प्रतीत होता है। सम्भव है कि श्रीहर्ष और उदयन समकालीन न रहे हों और श्रीहर्ष के द्वारा उदयन का पराजित होना चाण्डु पण्डित की चण्ड कल्पना मात्र हो।

ऐसे ही माधव कृत शङ्करदिग्विजय[3] में शङ्कराचार्य द्वारा उदयन का परास्त

---

१ ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।

२ षष्ठः खण्डनखण्डतोऽपि सहजात्क्षोदक्षये तन्महा…

'डा० सिद्धेश्वर वर्म्मा कमोमोरेशन वाल्यूम में, जो अभी अभी प्रकाशित हुआ है, इस मत का कि उदयन और हीर का शास्त्रार्थ हुआ था, पुनः स्थापन किया गया है किन्तु लेखक के तर्क पुष्ट नहीं हैं।

३ शङ्करः बाणं, मयूरं, खण्डनकर्त्तारं श्रीहर्षं
तत्प्राचीनमुदयनाचार्यं च शास्त्रार्थे विजिग्ये।'

होना लिखा है किन्तु शङ्कराचार्य और उदयन कथमपि समकालीन नहीं हो सकते।

उदयनाचार्य के आश्रयदाता के विषय में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। नवमी शताब्दी के पश्चात् हिन्दू मत का पुनरुत्थान प्रारम्भ हो जाता है। परमार, चन्देल, चेदि और सेन राजाओं ने इस पुनरुत्थान में योग दिया। परम माहेश्वर श्रीमद्गाङ्गेय देव चेदि ने जिन्होंने शतवर्ष की आयु हो जाने पर प्रयाग में शरीर को गङ्गार्पण कर दिया था तथा जिन्होंने प्रख्यात भोज परमार को परास्त किया था, तीरभुक्ति तक अपना राज्य-विस्तार कर लिया था। सम्भव है कि मिथिला में जो न्यायमत का प्रवर्तन हुआ वह इस राजनीतिक कारण से हुआ हो। पालवंश के समाप्त हो जाने पर सेनवंश के समय में हिन्दू मत का वङ्गदेश में पुनरुत्थान हुआ। सेन राजा हिन्दूमतावलम्बी थे। विजयसेन प्रसिद्ध शैव था जिसने देवपाड़ा में प्रद्युम्नेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया। बल्लालसेन ने दानधर्म पर एक पुस्तक की रचना तो की ही किन्तु स्वयं भी उसने महादान दिये थे ऐसी अनुश्रुति है। लक्ष्मणसेन अनेक विद्वानों का आश्रयदाता था। यह न्याय की धारा मिथिला और वङ्गदेश में इन्हीं शैवमतावलम्बी राजाओं के आश्रय से वर्धित हुई।

उदयनाचार्य के धार्मिक मत के विषय में भी ज्ञात नहीं। हरिभद्र सूरि ने षड्दर्शनसमुच्चय में नैयायिकों को शैव और वैशेषिकों को 'पाशुपत' कहा है। इस बात की पुष्टि प्रमाणान्तर से भी होती है। वाचस्पति मिश्र न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका में पिनाकी की वन्दना करते हैं। उदयन भी न्यायकुसुमाञ्जलि के प्रथम स्तवक के आरम्भ में और द्वितीय स्तवक के अन्त में[1] शिववन्दन करते हैं। अतः अनुमान होता है कि उदयनाचार्य शैव रहे हों। न्यायकुसुमाञ्जलि के चतुर्थ स्तबक का सुन्दर श्लोक है:—

साक्षात्कारिणि नित्ययोगिनि परद्वारानपेक्षस्थितौ
भूतार्थानुभवे निविष्टनिखिलप्रस्तारि वस्तुक्रमः।
लेशादृष्टिनिमित्तदुष्टिविगमप्रभ्रष्टशङ्कातुषः
शङ्कोन्मेषकलङ्किभिः किमपरैस्तन्मे प्रमाणं शिवः॥ ६॥

१ कारं कारमलौकिकाद्भुतमयं मायावशात्संहरन्
हारं हारमपीन्द्रजालमिव यः कुर्वञ्जगत् क्रीडति।
तं देवं निरवग्रहस्फुरदभिध्यानानुभावं भवं
विश्वासैक भुवं शिवं प्रति नमन् भूयासमन्त्येष्वपि॥ (द्वितीय स्तबक)

आचार्य की न्यायग्रहग्रन्थिल भाषा का उत्कृष्ट रूप उनके सारे ग्रन्थों में उपलब्ध है, किन्तु भावनापूर्ण सुकुमार वस्तु का साहित्यिक निबन्धन करने में भी वे दक्ष थे। इस बात का प्रमाण न्यायकुसुमाञ्जलि के अन्तिम श्लोक से होता है। आचार्य यहाँ भावनिर्भर होकर प्रार्थना करते हैं:—

इत्येवं श्रुतिनीतिसम्प्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते
येषां नास्पदमादधासि हृदये ते शैलसाराशयाः।
किन्तु प्रस्तुतविप्रतीपविधयोऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः
काले कारुणिक ! त्वयैव कृपया ते तारणीया नराः ॥

हे कारुणिक ! वे कठिन पाषाणहृदय हैं जो श्रुति और नीति के जल से प्रक्षालित होने पर भी हृदय में तुझे धारण नहीं करते, किन्तु (इतना होने पर भी) अपनी करुणा के द्वारा वे नर तेरे द्वारा भवसागर से पार कर दिये जावेंगे। क्योंकि उन्होंने खण्डन करने के लिये ही सही प्रतीपविधि से तुम्हारा चिंतन तो किया है।

इसी तरह का एक और श्लोक आचार्य प्रणीत है:—

अस्माकन्तु निसर्गसुन्दर ! चिराच्चेतो निमग्नं त्वयी-
त्यद्धानन्दनिधे ! तथापि तरलं नाद्यापि सन्तृप्यते।
त्वन्नाथ त्वरितं विधेहि करुणां येन त्वदेकाग्रतां
याते चेतसि नाप्नुवाम शतशो याम्याः पुनर्यातनाः ॥

उदयनाचार्य के निम्नोक्त ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(क) न्यायवार्त्तिक-तात्पर्य टीका-परिशुद्धि, (ख) न्यायपरिशिष्ट अथवा बोधशुद्धि, (ग) किरणावली, (घ) आत्मतत्त्व-विवेक अथवा बौद्धधिक्कार, (ङ) न्यायकुसुमाञ्जली।

प्रथम ग्रन्थ वाचस्पति मिश्र की न्यायवार्त्तिक-तात्पर्यटीका की व्याख्या के लिये लिखा गया है। अन्तिम दो आत्मतत्त्वविवेक और न्यायकुसुमाञ्जली विद्वत्समाज में विशेष रूप से समादृत है। आत्मतत्त्वविवेक बौद्धों के चार सिद्धान्तों के खण्डन के लिये लिखा गया है। ये चार सिद्धान्त हैं:—(१) क्षणभङ्ग—प्रत्येक वस्तु क्षणिक है (२) बाह्यार्थभङ्ग—वस्तु का बाह्यार्थ नहीं होता (३) गुणगुणिभङ्ग—गुण और गुणी में अभेद होता है और (४) अनुपलम्भ—जगत् शून्य है। पुस्तक पाँच भागों में विभक्त है। चार विभाग इन चार सिद्धान्तों के खण्डन में लिखे गये और पांचवा विभाग आत्मा की सिद्धि प्रतिष्ठापित करता है।

'कुसुमाञ्जली' भी पांच स्तबकों में विभक्त है । जैसा ऊपर कह आये हैं, यह पुस्तक तार्किक आधार पर ईश्वरसिद्धि का अप्रतिम निदर्शन है ।

न्याय शास्त्र के इस भास्कर के सम्बन्ध में निम्न गर्वोक्ति प्रचलित है :—

वयमिह पदविद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा
यदि पथि विपथे वा वर्तयामः स पन्थाः ।
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा
नहि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः ॥

प्रश्न

१. न्याय शास्त्र के इतिहास में उदयनाचार्य का महत्त्व बतलाइये ।

२. उदयनाचार्य के सम्बन्ध की जनश्रुति का उल्लेख कर उनकी समीक्षा कीजिये ।

३. उदयनाचार्य की जन्मतिथि, स्थान और ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ लिखिये ।



सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्री शङ्कर मिश्र

[पन्द्रहवीं शताब्दी]

द्वादश शताब्दी से मिथिला में नव्यन्याय की धारा प्रवर्तित हुई। गङ्गेशोपाध्याय इसके प्रवर्त्तक थे। त्रयोदश शताब्दी से वहाँ स्मार्त निवन्धों का लेखन-पठन आरम्भ होता है। अहेश्वर मिश्र जिनके मत का उल्लेख चण्डेश्वर ने अपने 'विवाद रत्नाकर' में तथा बर्धमान ने दण्डविवेक में किया है और जिनके अद्यावधि अनुपलब्ध ग्रन्थ का नाम सम्भवतः 'व्यवहारतरङ्ग' था, मिथिला के प्राथमिक स्मार्त्त निबन्ध-लेखक थे। ये दोनों प्रवृत्तियाँ असाधारण प्रातिभ विद्वान् शङ्कर मिश्र में विकसित हुई। उन्होंने जिसप्रकार न्याय-वैशेषिक उसीप्रकार स्मार्त्त विषयों के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखे। इनके विषय में उक्ति है कि:—

शङ्करवाचस्पत्योः शङ्करवाचस्पती सदृशौ।
पक्षधरः प्रतिपक्षी लक्ष्यीभूतो न च क्वापि ॥

शङ्कर मिश्र का जन्म दरभङ्गा के 'सरिसव' नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम [1]भवनाथ, माता का भवानी और पितृव्य का जयनाथ था। आप 'सोदरपुरिये सरिसव' मूल के श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। आप के पिता विद्वान् तो थे ही, साथ ही अत्यन्त अभिमानी व्यक्ति थे। इन्होंने कभी याचना नहीं की और इसलिये इनका नाम ही अयाची पड़ गया था। इसके विषय में एक मनोरञ्जक कथा है। एक समय बालक शङ्कर की विचित्र प्रतिभा देखकर, एक राजा ने प्रसन्न होकर प्रभूत धनराशि बालक को दी। माता ने प्रसन्न होकर घृताक्त पक्वान्न बनाना आरम्भ किये। भवनाथ जब सन्ध्या वन्दन से लौटे तो दृश्य ही दूसरा देखा। रोज के समान साधारण भोजन के स्थान पर सुन्दर पक्वान्न बन रहे थे। दरिद्रव्रती ब्राह्मण ने सांस लेकर कहाः—

अधीतमध्यापितमर्जितं यशो न शोचनीयं किमपीह भूतले।

इस तरह पिता को ठिठकते हुये देखकर शिशु शङ्कर बोल उठाः—

अतः परं श्रीभवनाथशर्मणो मनोमनोहारिणि जाह्नवीतटे।

---

1 अकृत भवानीतनयो भवनाथसुतो भवार्चने निरतः।

शङ्कर मिश्र की साक्षी से ज्ञात होता है कि भवनाथ मिश्र वैशेषिक शास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। इनका कथन है कि:—

याभ्यां वैशेषिके तन्त्रे सम्यग्व्युत्पादितोस्म्यहम्।
कणादभवनाथाभ्यां ताभ्यां मम नमः सदा॥

अपने अनेक ग्रन्थों में शङ्कर मिश्रने अपने पिता का स्मरण किया है। ये रघुदेव उपाध्याय अपर नाम कणाद और महेश ठक्कुर के शिष्य थे। महेश ठक्कुर ने पक्षधर मिश्र के 'आलोक' पर दर्पण टीका लिखी है। इसी 'दर्पण' का शङ्कर मिश्र ने त्रिसूत्री निबन्ध व्याख्या[1] में उल्लेख किया है।

शङ्कर मिश्र के स्थितिकाल के विषय में विवाद है। इनकी पुस्तक 'रसार्णव' में राजा पुरुषोत्तम का उल्लेख है:—

'सभ्याश्चेत् प्रतियान्ति मामपि कथामावेदयामो वयम्।
वीरश्रीपुरुषोत्तमक्षितिपते तत्रावधानङ्कुरु॥'

इन पुरुषोत्तम (गरुडनारायण) का राज्यारोहण वर्ष १५२८ ई० माना गया है। अत एव शङ्कर मिश्र सोलहवीं शताब्दी के तृतीय शतक में रहे होंगे।

किन्तु हस्तलेख के कुछ ऐसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिन से उपर्युक्त धारणा में सन्देह उत्पन्न होता है। रघुनाथमन्दिर जम्मू में प्राप्त शङ्करकृत 'भेदप्रकाश' के हस्तलेख की तिथि चैत्रशुक्ल १५२९ वैक्रम तदनुसार १४७२ ईस्वी, सरस्वती-भवन काशी में रक्षित शाङ्करी टीका के हस्तलेख का वर्ष १४७२ ई० और नेपाल-राज्य में प्राप्त तात्पर्य टीका की प्रति का समय १४८९ ई० है। इस से अनुमित होता है कि शङ्कर मिश्र पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में प्रख्यात हो चुके थे। इसकी पुष्टि एक अन्य प्रमाण से होती है।

बिल्वपञ्चक वंश में उत्पन्न, भवेश के पुत्र वर्धमान महामहोपाध्याय का समय सामान्यतः १४५०–१५०० ईस्वी माना जाता है। वे भवेश तथा उनके पुत्र रामभद्र के काल में न्यायाध्यक्ष थे। इन्होंने गङ्गाकृत्य विवेक, दण्डविवेक इत्यादि अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है। शङ्कर मिश्र इन वर्धमान महामहोपाध्याय के गुरु थे। अतएव पन्द्रहवीं शताब्दी के द्वितीयार्ध में प्रख्यात हो चुके थे।

---

१ प्रकाशदर्पणोद्द्योतकृद्भिर्व्याख्या कृतोज्ज्वला।

शङ्कर मिश्र की प्रतिभा एकोन्मुखी नहीं थी। आप जिस प्रकार न्याय के उसी प्रकार धर्मशास्त्र के विद्वान् थे। तार्किक बुद्धिप्रवण प्रायः सहृदय साहित्यिक नहीं होते हैं। किन्तु शङ्कर मिश्र के उपलब्ध ग्रन्थों से उन के साहित्यिक होने का भी अनुमान होता है। आपकी साहित्यिक प्रतिभा शैशवकाल से ही अपना परिचय देने लगी थी। किंवदन्ती है कि शङ्कर जब पांच वर्ष के ही थे तब ही उन्होंने एक राजा के अनुरोध से निम्नलिखित श्लोक का निर्माण किया था :—

चलितश्चकितश्छन्नः प्रयाणे तव भूपते।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

इसमें अन्तिम श्लोकार्ध वैदिक ऋचा का अंश है किन्तु भूपति के प्रसङ्ग में जोड़ा जाकर विलक्षण चमत्काराधायक हो गया है। साधारण अर्थ है कि हे नृप ! तेरे युद्धप्रयाण के अवसर पर सहस्रशीर्ष शेषनाग विचलित, सहस्राक्ष इन्द्र चकित और सहस्रपात् सूर्य सैनिकों से उत्थित पदधूलि से आच्छन्न हो जाते हैं। 'यथासङ्ख्य' अलंकार के साथ ही साथ प्रसङ्गगर्भत्व ने श्लोक में विलक्षणता उत्पन्न कर-दी है। कहा जाता है कि उसी नृपति की सभा में आपने गर्वोक्ति की थी :—

बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम् ॥

'मैं बालक अवश्य हूँ किन्तु मेरी बुद्धि प्रौढ़ हो चुकी है। यद्यपि मेरी वय पाँच वर्ष की भी नहीं है तथापि मैं त्रिभुवन वर्णन कर सकता हूँ।' यह श्लोक इनके ग्रन्थ 'पण्डितविजय' में भी मिलता है।

आपके निम्न दार्शनिक ग्रन्थ हैं :—

१. आत्मतत्त्वविवेककल्पलता :—यह ग्रन्थ उदयनाचार्य के मूलग्रन्थ पर टीका है।

२. आनन्दवर्धन :—श्रीहर्ष के खण्डनखण्डखाद्य पर टीका है। इसका उल्लेख प्रागल्भ्याचार्य ने अपनी टीका में किया है।

३. तत्त्वचिन्तामणिमयूख :—गङ्गेशोपाध्याय के ग्रन्थ पर टीका।

४. त्रिसूत्रीनिबन्धव्याख्या :—परिष्कार ग्रन्थ है।

५. न्यायलीलावतीकण्ठाभरण :—वल्लभाचार्य के न्यायलीलावती पर टीका है।

६. भेदप्रकाश अथवा भेदरत्नप्रकाशः—अद्वैत वेदान्त का खण्डन है। सर्वज्ञात्म मुनि ने अपने संक्षेपशारीरक में इसका खण्डन किया है।

७. वैशेषिकसूत्रोपस्कारः—कणादसूत्रों पर टीका है। ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा हैः—

सूत्रमात्रावलम्बेन निरालम्बेऽपि गच्छतः।
खे खेलवन्ममाप्यत्र साहसं सिद्धिमेष्यति ॥

८. वादिविनोदः—न्यायग्रन्थ है।

धर्मशास्त्र पर आपके निम्नलिखित ग्रन्थ हैंः—

१. छन्दोगाह्निकोद्धार

२. प्रायश्चित्तप्रदीप

३. श्राद्धप्रदीप

आफ्रेक्ट ने अपने 'कटलागोरस केटलागोरम' में 'श्राद्धपद्धति' को भी शङ्करकृत माना है किन्तु वह सम्भवतः धरणीधर के पुत्र रमाशङ्कर का है।

इनके अतिरिक्त इन्होंने अपने पिता के अनुरोध पर 'गौरीदिगम्बरप्रहसन' भी लिखा था।

प्रश्न

१. शङ्कर मिश्र के महत्त्व, तिथि और साहित्यिक एवं दार्शनिक रचनाओं का विवेचन कीजिये।

२. निम्नोक्त श्लोकों का सप्रसङ्ग पल्लवन कीजियेः—

'बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम् ॥'
'शङ्करवाचस्पत्योः सदृशौ शङ्करवाचस्पती पुतौ।'



महामहोपाध्याय श्री रघुनाथ शिरोमणि

[पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध]

पिछले परिच्छेदों में हम लोग देख चुके हैं कि गुप्तकाल के पश्चात् हिन्दू न्याय की धारा मिथिला में प्रवाहित हुई। वाचस्पति मिश्र, उदयनाचार्य इत्यादि इस प्रदेश के प्रारम्भिक विद्वानों में से हैं। गङ्गेश के समय से मिथिला के न्यायशास्त्र के इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ होता है जो पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक चलता है। इस युग के प्रतिनिधि शङ्कर मिश्र का हमलोग अध्ययन कर चुके हैं। नवम शतक से पन्द्रहवीं शतक तक इस प्रदेश में न्यायज्योति अनिरुद्ध गति से प्रकाश विकीर्ण करती रही।

सोलहवीं शताब्दी से मिथिला के न्यायप्रदीप ने नवद्वीप बङ्गाल में वह दीप प्रकाशित किया जिसकी ज्योति अभी अभी तक अमन्द गति से आभा विच्छुरित करती रही। नवद्वीप में न्याय वासुदेव सार्वभौम के युग से प्रारम्भ हुआ, उसमें रघुनाथ शिरोमणि के काल मे अङ्कुर फूटे, मथुरानाथ तर्कवागीश के समय में वह पुष्पित हो उठा और अन्ततः जगदीश तर्कालङ्कार और गदाधर भट्टाचार्य तक आते आते वह फलीभूत हुआ।

पन्द्रहवीं शताब्दी के द्वितीयार्ध में उत्पन्न होने वाले वासुदेव सार्वभौम का व्यक्तित्व विलक्षण है। आपको चैतन्य महाप्रभु, धार्मिक निबन्धों के प्रख्यात लेखक रघुनन्दन, शाक्त तन्त्रों के प्रामाणिक व्याख्याता कृष्णानन्द और न्यायशास्त्र के इतिहास में युगान्तर उपस्थित करने वाले प्रसिद्ध विद्वान् रघुनाथ शिरोमणि के गुरु होने का सम्मान प्राप्त है। आपने पक्षधर मिश्र की विद्यापीठ में अध्ययन किया था और वहां से लौटकर नवद्वीप में न्यायविद्यालय प्रारम्भ किया। रघुनाथ शिरोमणि के समान शिष्य मिल जाने के कारण विद्यालय में गौरव आगया।

अद्भुत तार्किक रघुनाथ शिरोमणि वङ्गप्रदेश में उत्पन्न हुये थे। आपके जन्मग्राम का विषय विवादग्रस्त है। आप विभिन्न विद्वानों द्वारा श्रीहट्ट,[1] नवद्वीप

1 कान्तिचन्द्र राढ़ीः नवद्वीप महिमा (बंगलाभाषा में)
कुमुदनाथ मल्लिकः नदिया काहिनी (बंगला)
कालीप्रसाद वन्द्योपाध्यायः मध्ययुगेर बांगला (बंगला)

और वर्धमान विषयान्तर्गत पोटा ग्राम में उत्पन्न बतलाये गये हैं। शैशवावस्था में ही पितृविहीन हो जाने के कारण आप माता द्वारा अनेक कठिनाइयों से पाले गये। किम्वदन्ती है कि बालक रघुनाथ को उसकी माता ने आग लाने को कहा। आप अग्नि ले जाने के लिये बिना किसी पात्र के ही सार्वभौम की विद्यापीठ में आये। जब विद्यार्थियों ने जलते हुये कोयले दिये, प्रत्युत्पन्नमति रघुनाथ ने अपने हाथ में रेत रखकर आग ले ली। वासुदेव सार्वभौम ने दृश्य देखा और बुद्धिमान् रघुनाथ को अपने संरक्षण में ले लिया। विद्यारम्भ में एक कठिनाई पड़ी। बालक 'क' के बाद 'ख' अक्षर पढ़ने के साथ ही साथ यह जान लेना चाहता था कि 'क' के बाद 'ख' ही क्यों पढ़ाया जाता है और इसलिये व्याकरण और ध्वनिशास्त्र का विवेचन करना पड़ा। पदविद्या, साहित्य, कोष, धर्मशास्त्र पढ़ने के उपरान्त न्याय का अध्ययन हुआ और शीघ्र ही वे इस विषय में पण्डित हो गये।

सुनते हैं कि वासुदेव सार्वभौम के अध्यापन से तृप्त न होकर वे मिथिला के पक्षधर मिश्र की विद्यापीठ में चले आये। रघुनाथ [1]काने थे। विनोद में उनसे पूछा गया:—

आखण्डलः सहस्राक्षो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः।
अन्ये द्विलोचनाः सर्वे को भवानेकलोचनः॥

विद्यापीठ में प्रवेश प्राप्त होते ही रघुनाथ ने अपनी विद्या का परिचय दिया और वे सर्वोच्च कक्षा में भेजे गये। सुना जाता है कि इसी समय वासुदेव सार्वभौम और रघुनाथ शिरोमणि के बीच में पत्र व्यवहार हुआ। भले ही उसमें ऐतिहासिक सत्यता न हो किन्तु साहित्यिक मनोरमता के कारण प्रासङ्गिक श्लोक अध्येतव्य हैं। सार्वभौम ने भ्रमरान्योक्ति के रूप में रघुनाथ को लिखा कि:—

अपि दिवसमनैषीः पद्मिनीसद्मनि स्थः
रजनिषु निरतोऽभूः कैरविण्यां रमण्याम्।
कथय कथय भृङ्ग! स्वच्छभावेन तावत्
किमधिकसुखमाप्सीरत्र वा तत्र वेति॥

---

१ पक्षधर मिश्र और वासुदेव सार्वभौम के सम्बन्ध की किम्वदन्ती पण्डितों में अनेक रूप से प्रचलित हैं। किन्तु वे काने थे, इस विषय का उनके कुछ समकालीन लेखकों ने उल्लेख किया है। न्यायखण्डनखाद्यः—अभाग्यं गौडदेशस्य यत्र काणः शिरोमणिः॥

'हे भ्रमर ! दिन तुमने कमलिनी के क्रीड़ागृह में व्यतीत किया और रात्रि में तुम कैरविणी में रत रहे । अतएव निष्पक्ष भाव से यह तो बताओ कि तुम्हें कहाँ अधिक सुख मिला, यहां अथवा वहाँ ।' पत्र का आशय स्पष्ट है । उत्तर में रघुनाथ ने अधोलिखित अन्योक्ति अपने प्रथम गुरु को लिख भेजीः—

त्वं पीयूष ! दिवो विभूषणमसि द्राक्षे परीक्षेत कः
माधुर्यं तव विश्वतोऽपि विदितं साध्वी च माध्वीकता ।
किन्त्वेकन्त्वपरं त्वरुन्तुदमपि ब्रूमो न चेत् कुप्यसि
यत्कान्ताधरपल्लवे मधुरिमा नालक्षि कुत्रापि सः ॥

हे अमृत ! आप स्वर्ग के अलङ्कार हैं । दाख की मधुरिमा भी स्वतः सिद्ध है– उसकी परीक्षा कौन करे ? आपका माधुर्य विश्वविख्यात है किन्तु द्राक्षा की मधुरता भी अनुपम है । किन्तु इन सब चीजों के अतिरिक्त एक ऐसा पदार्थ है जो सर्वाधिक मधुर है । यदि आप क्रुद्ध न हों तो कहूँ । कान्ता के अधरपल्लवों में जो मिठास है वह अन्यत्र नहीं देखी गई ।

वासुदेव सार्वभौम ने आशय समझा, खिन्न हुये और उन्होंने अपने अन्तेवासी को उपालम्भ दियाः—

यस्या जन्मान्यवंशे वसतिरपि सदा दूरदेशे पुरासीत्
सैषा भूत्वा वधूटी प्रकटितविनया वेश्ममध्ये प्रविश्य ।
आजन्मप्राणतुल्यां गुरुजनजननीं सोदरान् बन्धुवर्गान्
दूरीकृत्य स्वगेहात् पतिमभिरमते धिक् गृहस्थाश्रमं तम् ॥

धिक्कार गृहस्थाश्रम को । कन्या अपने पितृवंश को प्रसन्न करती हुई जन्मग्राम में क्रीड़ा करती रहती है । किन्तु जैसे ही गृहस्थाश्रम में वधू बनकर उसने प्रवेश किया तैसे ही अपने प्राणप्रिय माता-पिता स्वजनों का परित्याग कर दूर देश में शैशवावस्था में अपरिचित पति में ही रमण करने लगती है ।

रघुनाथ शिरोमणि पत्र प्राप्त कर चुप हो बैठे ।

गङ्गेश उपाध्याय के पश्चात् रघुनाथ शिरोमणि सबसे बड़े तार्किक हुये । अपनी अपनी अगाध विद्वत्ता के कारण ही इनको शिरोमणि की उपाधि प्राप्त हुई । अपने ग्रन्थ तत्त्वचिन्तामणि दीधिति में अपने लिये 'तार्किकशिरोमणि' का अभिधान ग्रहण किया है ।

यशोविजय इन के विषय में कहता है कि:—

न्यायाम्बुधिर्दीधितिकारयुक्तिकल्लोलकोलाहलदुर्विगाहः ।
तत्रापि पातुं न पयः समर्थः किं नाम धीमत् प्रतिभाम्बुवाहः ॥

(अष्टसाहस्री–विवरण, अप्रकाशित)

यद्यपि दीधितिकार की युक्तियों के कल्लोल से उत्थित कोलाहल के कारण न्यायसमुद्र में अवगाहन करना कठिन हो गया है; किन्तु क्या बुद्धिमानों की प्रतिभापयोधर के द्वारा न्यायसमुद्र में निमज्जन नहीं हो सकता ?

स्वयं शिरोमणि जी की उक्ति है:—

विदुषां निवहैरिहैकमत्यायददुष्टं निरटङ्कि यच्च दुष्टम् ।
मयि जल्पति कल्पनाधिनाथे रघुनाथे मनुतां तदन्यथैव ॥

श्रीहर्ष के समान आप कवि भी थे । आप की साहित्यिक रचना अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुई । यह भी ज्ञात नहीं कि आपने साहित्य–प्रणयन किया भी था या नहीं किन्तु विद्वन्मण्डल में सुनी जाती हुई आप की एक गर्वोक्ति ही इस विषय की ओर इङ्गित करती है । उक्ति है:—

अनास्वाद्य गौडीमनाराध्य गौरीं विना तन्त्रमन्त्रैर्विना शब्दचौर्यात् ।
प्रसिद्धप्रवृद्धप्रबन्धप्रवक्ता मदन्यः कविः को विरिञ्चिप्रपञ्चे ॥

'मद्यपान कर कुछ कवियों ने अपनी मन्दबुद्धि को प्रेरित कर काव्यरचना की । कुछ कवि ऐसे भी हैं कि जिन्हें ईश्वरदत्त काव्यप्रतिभा न होने पर 'चिन्तामणि' आदि मंत्रों से त्रिपुरसुन्दरी की उपासना करनी पड़ी । तन्त्र और मन्त्र की 'सहायता से काव्यप्रणयन करने वाले व्यक्तियों की संख्या स्वल्प नहीं और शब्दभण्डार में दारिद्र्य रहने पर चोरी कविरूप से प्रसिद्ध व्यक्तियों के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं । किन्तु मेरे अतिरिक्त भी ईश्वर ने किसी व्यक्ति को उत्पन्न किया है जिसने बिना इन सहायताओं के प्रौढ़िप्राप्त काव्यप्रबन्धों का प्रणयन किया है ?'

कृष्णदास सार्वभौम भट्टाचार्य ने शिरोमणि की 'अनुमान दीधिति' पर 'प्रसारिणी' लिखी । इस 'प्रसारिणी' की एक प्रतिलिपि १६०२ ई० में हुई अतएव रघुनाथ शिरोमणि का समय इसके बहुत पहिले होगा । रघुनाथ शिरोमणि चैतन्य

महाप्रभु के समकालीन थे अतएव पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और सोलहवीं के पूर्वार्ध में आपकी स्थिति रही होगी।

शिरोमणि का सर्वाधिक विख्यात ग्रन्थ है गङ्गेश की 'तत्त्वचिन्तामणि' पर 'दीधिति' टीका। इसके हस्तलेख सर्वत्र भारतवर्ष में उपलब्ध होते हैं, जो इस की विस्तृत लोकप्रियता का साक्षात् प्रमाण है। इस 'दीधिति' पर करीब दो दर्जन विद्वानों की टीका है। 'दीधिति' में पक्षधर मिश्र कृत आलोक टीका की कड़ी आलोचना है।

इसके अतिरिक्त आप के निम्न ग्रन्थ हैं :—

१. पदार्थतत्त्वनिरूपण।

२. बौद्धधिक्कारशिरोमणि :—उदयन के आत्मतत्त्वविवेक की टीका।

३. खण्डनखण्डखाद्य दीधिति।

४. अख्यातवाद :—बिब्लिओथिका इण्डिका पुस्तकमाला में प्रकाशित।

५. किरणावलीप्रकाश दीधिति।

प्रश्न

१. रघुनाथशिरोमणि का न्यायशास्त्र के इतिहास में महत्त्व प्रदर्शित कीजिये।

२. रघुनाथशिरोमणि और वासुदेव सार्वभौम के पारस्परिक सम्बन्ध पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।



अर्वाचीन खण्ड

न्यायशास्त्र के इतिहास के माध्यम से हमलोगोंने पूर्वमध्यकालीन दो विद्या-पीठों--मिथिला और नवद्वीप की विद्वत्ता का अध्ययन किया। नवद्वीप की परम्परा तो अभी अभी तक आई। पूर्व मध्यकाल के पश्चात् उत्तर मध्यकाल में अफगान, मुगल आदि राजाओं का शासन रहा। आंग्ल-शासन से अर्वाचीन युग आरम्भ होता है।

इस युग के आरम्भ में ही ईसाई मिशनरियों ने संस्कृत साहित्य का धार्मिक कारणों से अध्ययन करना प्रारम्भ किया। पहले पुर्त्तगाली और उस के बाद अङ्गरेज मिशनरी इस क्षेत्र में आये। इस के बाद एकाएक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में संस्कृत भाषा का महत्त्व बढ़ गया। पश्चिम में जर्मनी और पूर्व में भारत वर्ष तक फैली हुई सारी भाषाओं के शब्द भण्डार में एक आश्चर्यजनक साम्य दृष्टिगोचर हुआ। इस साम्य के आधार पर 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' की नींव पड़ी और इसके साथ ही साथ विश्व के भाषावैज्ञानिकों की दृष्टि प्राचीनतम आर्यभाषा संस्कृत की ओर उठी। इसके साथ ही साथ राजनीतिक कारणों से संस्कृत के विभिन्न अङ्गों के अध्ययन का प्रोत्साहन अंगरेजों ने दिया। प्रस्तुत खण्ड में इस काल के कतिपय उद्भट विद्वानों का संक्षिप्त जीवनचरित तथा परिशिष्ट में इस काल के कतिपय यूरोपीय संस्कृतज्ञों के जीवन का परिचय दिया जावेगा।



म० म० पण्डित बापूदेव शास्त्री सी० आई० ई०

[जन्म १ नवम्बर १८२१ ई०, निधन ६ जून १८९० ई०]

उत्तर मध्यकालीन ज्योतिष शास्त्र के इतिहास में भास्कराचार्य का नाम सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण है। भास्कराचार्य के पश्चात् ज्योतिषशास्त्र की प्रगति अवरुद्ध हो गई। केशव के पुत्र गणेश द्वारा लिखित 'ग्रहलाघव' की रचना सन् १५२० ई० में हुई। 'मकरन्द' सम्भवतः पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया था। इस के बाद फारसी और अरबी के प्रभाव ने कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं किया किन्तु पाश्चात्य विज्ञान के सम्पर्क से प्रारम्भ में ज्योतिष शास्त्र में कुछ नवीन शोध की ओर प्रवृत्ति हुई थी। दुर्भाग्य से यह प्रवृत्ति पूर्णतः व्यक्त होने के पूर्व ही मुरझा गई। हमारे चरित्र नायक में प्राचीन ज्योतिष एवं गणित के साथ ही साथ अर्वाचीन पाश्चात्य गणित के अध्ययन का चाव था। यदि यह ढर्रा कुछ आगे बढ़ता तो ज्योतिष शास्त्र और गणित के अध्ययन में नवीन प्राणसञ्चार हो जाता।

महामहोपाध्याय पण्डित बापूदेव शास्त्री का जन्म १ नवम्बर १८२१ ई० में दक्षिण भारत के रत्नगिरि प्रान्त में बेलगेश्वर नामक ग्राम में हुआ था। उस ग्राम में वेदपाठ के सतत अभ्यासी तथा शिव के परम भक्त 'पराञ्जपे' उपनामक ब्राह्मण रहा करते थे। इनको 'देव पराञ्जपे' के नाम से भी पुकारा जाता था। कुछ दिनों तक पूवेलि स्थान में रहने के पश्चात् बापूदेव शास्त्री के एक पूर्वज चिन्तामणि शास्त्री काय गांव टोका नामक स्थान में रहने लगे थे। चिन्तामणि शास्त्री को सदाशिव नामक पुत्र हुये, इनसे पंडित सीताराम का जन्म हुआ। इनकी धर्मपत्नी का नाम सत्यभामा था। इन्हीं की कुक्षि में प्रतिभा सम्पन्न नृसिंह शास्त्री का जन्म हुआ था। इन्हें सभी 'बापू' के नाम से ही पुकारते थे। इसी बालक ने आगे चलकर संसार में अपना नाम अमर कर दिया।

दाक्षिणात्यों की प्रचलित प्रणाली के अनुसार सर्वप्रथम इन्होंने अष्टाध्यायी, पिंगल सूत्र, शब्दरूपावली तथा अमरकोष आदि ग्रन्थों को पढ़ा। इसके पश्चात् यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न हो जाने पर ऋग्वेदसंहिता आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया परन्तु अनवरत रुग्ण रहने के कारण बचपन में पढ़ी सारी चीजें विस्मृत हो गई। अनन्तर इनके पिताजी इन्हें नागपुर ले गये और शास्त्राध्ययन में पुनः प्रवृत्त कराया। वहां रघुवंश आदि काव्य तथा, व्याकरण में सिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थों

को पढ़ लेने के पश्चात् शास्त्री जी पुनः पिताजी के साथ अपने ग्राम लौट आये। पूना में इन्होंने श्री पाण्डुरङ्ग तात्या दिवेकर की पाठशाला में गणित पढ़ना प्रारम्भ किया। गणित में तो इनकी बुद्धि अत्यंत तीव्र थी। पूना में कुछ समय पढ़ने के बाद शास्त्री जी ने पुनः नागपुर जाकर कान्यकुब्ज पण्डित ढुण्ढिराज महोदय से भास्कराचार्य की लीलावती तथा बीजगणित आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया।

इसके बाद संयोग से इनके पिता के प्रिय मित्र विद्यारसिक सिंहोर नगर के पोलिटिकल एजेण्ट श्री एल. विल्किन्सन नामक अंग्रेज ने इनकी प्रतिभा की प्रशंसा सुनकर इनसे गणित के कुछ प्रश्न पूछे। अल्प वयस्क बापूदेव जी के उत्तर को सुनकर वे अवाक् रह गये। श्री विल्किन्सन महोदय ने भविष्यवाणी की कि यह बालक निश्चय ही सिद्धान्त गणित में भास्कराचार्य के समान भारत का नाम ऊँचा करेगा। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर वे बापूदेव जी को सिंहोर नगर ले आये। यहाँ पर शास्त्रीजी ने पण्डित सेवाराम जी से सिद्धान्त शिरोमणि तथा श्री विल्किन्सन् महाशय से रेखागणित, पदार्थ विज्ञान आदि पढ़ना प्रारंभ किया। यहाँ पर इन्होंने अनेक विद्वानों के बीच अतिशय प्रतिष्ठा प्राप्त की।

कलकत्ते में १८४० ई० के १६ दिसम्बर को एक जनरल् कमेटी हुई। उसमें यह निश्चय हुआ कि फोर्ट विलियम कालेज के सेक्रेटरी कप्तान जी० टी० मार्शल साहब कलकत्ते के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयनारायण तर्कपंचानन को लेकर काशी की पाठशाला का निरीक्षण कर आवें। इसी आज्ञा के अनुसार उक्त साहब ने काशी की पाठशाला की देख भालकर ता० २ मई १८४१ ई० के दिन कलकत्ते की जनरल कमेटी के सेक्रेटरी डाक्टर टी० ए० वाइज के पास रिपोर्ट लिखी कि काशी की संस्कृत पाठशाला के लिये एक नेच्युरल फिलासफी और संस्कृत गणित पढाने के लिये अध्यापक होना चाहिये। यह बात विल्किन्सन् साहब को ज्ञात हुई। उन्होंने तुरन्त कलकत्ते में बापूदेव शास्त्री के लिये शिफारिस की और लिखा कि काशी की संस्कृत पाठशाला में गणिताध्यापक होने के लिये यही योग्य हैं।

विल्किन्सन् साहब की शिफारिस सफल हुई। कमेटी ने बापूदेव शास्त्री को पाठशालाध्यापक पद पर नियुक्त कर दिया। तदनुसार आप फरवरी १८४२ ई० में काशी राजकीय संस्कृत पाठशाला में गणित के अध्यापक पदपर नियुक्त हुये।

आप बड़े सफल अध्यापक थे। विद्यार्थियों की सुविधा के निमित्त आपने सिद्धान्त एवं गणित के अनेकों ग्रन्थों का निर्माण तथा अनेकों ग्रन्थों का अनुवाद एवं संशोधन करके गणित विषय को अत्यन्त सुलभ एवं सहज बनाने का प्रयत्न किया। पाठशाला के अध्यक्ष डाक्टर जेम्स० आर० वैलेन्टाइन महोदय ने आपके पाण्डित्य पर मुग्ध होकर यूरोपीय गणितिज्ञों के समक्ष आपकी भूरि भूरि प्रशंसा की। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशों में भी आपकी कीर्तिलता फैलने लगी। पाश्चात्य विद्वान् भी आपके पास शंका समाधान के निमित्त आने लगे।

१८५० ई० में बनारस के मजिस्ट्रेट श्री मेकलोड के अनुरोध पर आपने हिन्दी में बीजगणित का निर्माण किया। आपके इस कार्य पर सन्तुष्ट होकर सीमा-प्रान्त के अधिपति डाक्टर डोम्यासन महोदय ने आपको दो सहस्र रुपये का पारितोषिक दिया। एक समय इंग्लॅण्ड में एक ज्योतिषी ने चन्द्र का स्वांग भ्रम नहीं होता यह सिद्ध कर विलायत के 'इंग्लिश जर्नल आफ् एजुकेशन' नामक पत्र में छपवाया और उसकी एक प्रति बालन् टाइन् साहब के पास भेजी। साहब ने वह प्रति आपको दिखलाई। आपने देखते ही कहा कि यह अशुद्ध है। फिर बहुत दिन तक उक्त लेखक से आपका वादानुवाद होता रहा। अन्त में उसने परास्त होकर आपके सिद्धान्त को मान लिया। इसी प्रकार कई बार आपसे विलायत वासियों का शास्त्रार्थ हुआ। परन्तु सर्वदा उनको आपके बातों से सहमत ही होना पड़ता था।

१८६१ ई० में शास्त्री जी ने बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित 'बिब्लियोथिका इण्डिका' नामक ग्रन्थमाला में ज्योतिष शास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त का तत्तत्स्थल विशेष में उपपत्ति के सहित अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। इस पुस्तक के साथ श्री लान् सलिट् विल्किन्सन् महोदय कृत सिद्धान्त शिरोमणि के गोलाध्याय का अंग्रेजी अनुवाद भी सम्मिलित था। शास्त्री जी ने उक्त अनुवाद को तत्तत्स्थल विशेष में टिप्पणी के सहित संशोधित किया था। इनके पाण्डित्य पर मुग्ध होकर लण्डन के विद्वानों ने इन्हें ता० ४ जुलाई १८६४ ई० में 'रायल एशियाटिक' सभा का मान्य सदस्य बनाया। सूर्यसिद्धान्त की उपपत्ति सहित अंग्रेजी अनुवादपर पंजाब प्रान्त के गवर्नर श्री मेकलोड महोदय ने पत्रद्वारा इनकी अत्यन्त प्रशंसा की जो ता० १ मार्च सन् १८६६ के 'फ्रेण्ड आफ् इण्डिया' में छपा है।

इसके पश्चात् शास्त्री जी ने वीजगणित की द्वितीय आवृत्ति प्रकाशित कराई। इस कार्य से अत्यन्त प्रभावित होकर पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर महोदय ने महारानी विक्टोरिया के जन्मोत्सव के अवसर पर प्रयाग में आपको बहुमूल्य शाल के साथ एक हजार रुपया पुरस्कार रूप में दिये और अपनी वक्तृता में आपके अलौकिक गुणों का वर्णन किया। यह वक्तृत्व १८७६ ई० में 'अड्रेस बाइसर विलियूम्यूअर' के नाम से छपी है। १८६८ ई० में सर राधाकान्त बहादुर का परलोक वास होनेपर उनके स्थान में आनरेबल् राजा राजेन्द्र लाल मिश्र के प्रस्ताव से आप बंगाल एशियाटिक सोसायटी के मान्य सदस्य बनाये गये। १८७० ई० में भारत सरकार ने आपक कलकत्ता विश्वविद्यालय का फेलो (सभासद) बनाया। १८७३ ई० में आपने चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय का इतना शुद्ध निश्चय किया कि उसमें एक क्षण का भी अन्तर नहीं पड़ा। इस पर मुग्ध होकर काश्मीरनरेश ने आपको एक सहस्र रुपये नगद और ५०० रुपये का दुशाला प्रदान किया।

१८८७ ई० की पहली जनवरी को भारत सरकार ने शास्त्री जी को सी. आई. ई. की उपाधि से विभूषित कर १८८७ ई० में ही महामहोपाध्याय की उपाधि से भी समलंकृत किया। १८८९ ई० में शास्त्री जी ने पेन्शन् ली अर्थात् इन्होंने ४७ वर्ष तक सरकार की सेवा की। इस दीर्घ अवधि तक ज्योतिष एवं गणित शास्त्र को सतत सेवा करने के पश्चात् अपने सुयोग्य विद्वान् शिष्यों पर इसका भार छोड़कर आप १८९० ई० के ६ जून में सदा के लिये इस संसार से चल बसे।

शास्त्री जी गणित शास्त्र में जैसी योग्यता रखते थे वैसी ही काव्य साहित्य में भी रखते थे। उनका संस्कृत गद्य-पद्य लेख बहुत ही सुन्दर होता था। शास्त्री जी समस्या पूर्ति भी अच्छी करते थे। एक बार उन्होंने **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** इस समस्या की पूर्ति इस तरह की थीः—

'शून्याल्लघीयान् ऋणरूपराशिर्महाननन्ताद्गुणितेन यस्मात्।
सिद्ध्यत्यतः सेष इवास्ति नूनमणोरणीयान् महतो महीयान्॥'

सं० १९२२ में श्रीमान् महाराजाधिराज काशीनरेश ईश्वरीनारायण सिंह महोदय के आदेशानुसार शास्त्री जी ने दृक् सिद्ध पञ्चाङ्ग बनाना प्रारम्भ किया। महाराज ने शास्त्री जी का पहला पञ्चाङ्ग देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर २००) रु० शास्त्री जी के लिये पुरस्कार भेजा और कहलाया कि हम पञ्चाङ्ग के निमित्त प्रतिवर्ष

२००) रु० दिया करेंगे। उक्त महाराज के जीवित काल तक यह सहायता प्रतिवर्ष मिलती थी। शास्त्री जी के दिवंगत होने पर शास्त्री जी के सुयोग्य शिष्य पं० चन्द्रदेव पंडया, पं० विनायक शास्त्री वेताल तथा पं० महादेव शास्त्री घाटे द्वारा सं० १९८० तक इस पञ्चाङ्ग का निरन्तर प्रकाशन होता रहा किन्तु इनके कथावशेष होने पर शास्त्री जी के पुत्र पं० गणपति देव शास्त्री ने इस पञ्चाङ्ग को सं० २००८ तक अविच्छिन्न रूप से प्रकाशित किया। इस के पश्चात् सं० २००९ में इस पञ्चाङ्ग का स्वत्वाधिकार उत्तर प्रदेशीय शासन के अधीन होने से उत्तर प्रदेशीय शासन द्वारा पं० गणपतिदेव शास्त्री के संपादकत्व में इस पञ्चाङ्ग का प्रकाशन अब तक हो रहा है।

आपने संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी इन तीनों भाषाओं में पांडित्यपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं।

आपकी हिन्दी रचनायें:—

१ व्यक्त गणित भाग २। २ बीज गणित भाग २। ३ भूगोल वर्णन। ४ खगोल सार। ५ फलित विचार। ६ पञ्चक्रोशीमार्ग विचार। ७ सायनवाद।

आपकी संस्कृत रचनायें:—

१ सिद्धान्तशिरोमणि टिप्पणी सहित। २ मानमन्दिरवर्णन।
३ प्राचीनज्यौतिषाचार्याशयवर्णन। ४ तत्त्वविवेकपरीक्षा भाग २।
५ विचित्रप्रश्नसंग्रह (उत्तरसहित) ६ अतुलयंत्र।
७ गोलप्रकाश। ८ सरलत्रिकोणमिति। ९ नूतनपञ्चाङ्गनिर्माण।

आपकी अंग्रेजी रचनायें:—

१ सूर्यसिद्धान्त की उपपत्ति सहित अंग्रेजी अनुवाद।

२ श्री लान्सलिट् विल्किन्सन् साहब के सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय के अंग्रेजी अनुवाद पर टिप्पणी।

प्रश्न

१. ज्योतिष शास्त्र के अर्वाचीन इतिहास में म० म० पं० बापूदेव शास्त्री की महत्ता प्रदर्शित कीजिये।

२. पं० बापूदेव शास्त्री का जीवन चरित लिखिये।

—o—

बालसरस्वती पं० बालशास्त्री रानाडे

[जन्म वि० सं० १८९६, निधन १९३७]

अफलातून का कथन है कि मानव-मस्तिष्क धागे के एक गुत्थी के समान होता है। शिक्षा का कार्य है कि उस गुत्थी को सुलझाकर सूत्र को विस्तारित कर दे। मनुष्य में स्वाभाविक गुण होते हैं। शिक्षा उनको उत्पन्न नहीं कर सकती, केवल उसका विकास कर सकती है। किन्तु अन्य विद्वान् स्वाभाविक गुणों को प्राधान्य न देकर 'श्रम' को परिस्थिति को प्रधानता देते हैं। जब हम बालसरस्वती के समान प्रातिभ व्यक्तित्वों को देखते हैं परिस्थिति जिनके विकास की स्थिति पूर्ण रूप से व्याख्या नहीं कर सकती है तब हमें हठात् अफलातून के 'स्वाभाविक गुण' अथवा 'अदृष्ट' की ओर इसकी व्याख्या के लिये देखना पड़ता है। किस प्रकार से 'परिस्थिति' उस शङ्कर मिश्र की अद्भुत प्रतिभा की व्याख्या कर सकेगी जिसने अपूर्ण पञ्चम वर्ष में जगत्त्रय के वर्णन की प्रतिज्ञा की। वैसे ही अत्यन्त शैशवावस्था से ही अद्भुत लोकोत्तर योग्यता का परिचय देने वाले बालशास्त्री रानाडे अथवा बालसरस्वती के प्रखर प्रतिभा के अजस्र प्रकाश की समुचित व्याख्या भौतिक परिस्थितियों से करना दुःसाध्य प्रतीत होता है। विस्मित कण्ठ से विद्वान् को कहना पड़ा—

> आसीच्छैशव एव यस्य विदुषां वृन्दे यशो निर्मलं-
> ख्यातो बालसरस्वतीत्यभिधया यो दुग्धमुग्धाननः॥

पं० बालशास्त्री का जन्म महाराष्ट्र देश में हुआ। आपके पिता श्री गोविन्दभट्ट चितपावन महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। निस्सन्तान होने के कारण वे दुःखी थे। सन्तान की कामना से उन्होंने एक यज्ञ किया। उसी अनुष्ठान के फलस्वरूप सं० १८९६ विक्रम में बालशास्त्री का जन्म हुआ। आप का नाम था विश्वनाथ किन्तु दुलार से 'बाल' अभिधान द्वारा पुकारे जाने पर आप बाद में भी 'बालशास्त्री' के रूप में ही प्रख्यात हुये।

सुनते हैं कि आप एक वर्ष की आयु में ही अपनी मातृभाषा में अस्खलित रूप से बातें कर लिया करते थे। मुग्ध चकित पिता ने अपने असामान्य पुत्र में भावी विद्वान् के लक्षण देखकर उसके समुचित विकास में दत्तचित्त हुये। किन्तु

'अहो दैवगतिश्चित्रा' जिस समय आप का अक्षरारम्भ संस्कार होने वाला था उसी समय आपके पिता का देहान्त हो गया। वायु चली, प्रभञ्जन का प्रवेग बढ़ा, झञ्झा ने वृक्षों को उखाड़ फेंका किन्तु पर्वत अपने क्रोड़ में वायु को एक क्रुद्ध वालक के समान तेजी से सञ्चरण करता हुआ देख कर हँस पड़ा। क्या वायु उस पर्वत को भी हिलावेगी ?

'न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।'

उदीयमान किन्तु दृढ़ व्यक्तित्व अनिर्दिष्ट अदृष्ट को साथ लेकर आगे बढ़ा। इनके पिता के एक परममित्र पण्डित रामकृष्ण दीक्षित ने इनकी देखभाल अपनी सन्तान के समान ही की। समुचित समय पर इनका उपनयन संस्कार हुआ। संस्कार के पश्चात् 'कृष्णयजुर्वेद संहिता' का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। आपकी बड़ी विलक्षण प्रतिभा थी कि एक बार ही मंत्र पढ़ने से वह याद हो जाया करता था। शीघ्र ही आपने वेद कण्ठस्थ कर लिया। आरम्भ से ही आपकी अलौकिक मेधा-शक्ति और स्मरण शक्ति का परिचय मिला। जव आप आठ वर्ष के ही थे कि 'गुनगाहक' बाजीराव पेशवा की दृष्टि आप पर पड़ी। विनायकराव पेशवा के सामने वालपण्डित ने वैदिकज्ञान की परीक्षा में जिस विद्वत्ता का प्रदर्शन किया बालखिल्य-शास्त्र के विषय में बातें बतलाई जिन्हें सुनकर पण्डितवृन्द प्रसन्न हो गये। पेशवाने इन्हें सम्मानित किया और 'बालसरस्वती' की उपाधि दी।

उस समय उत्तरापथ के महाराष्ट्रीय विद्वानों में ग्वालियर के पं० बाबाशास्त्री की ख्याति वहुत थी। अतः बालशास्त्री अपने अध्ययन के लिये ग्वालियर गये। वहाँ आपने बावाशास्त्री से व्याकरण और कुप्पाशास्त्री से मीमांसा का अध्ययन किया। सौभाग्य से उसी समय पूना के न्यायशास्त्र के विद्वान् मोरशास्त्री भी ग्वालियर आये। उनसे आपने न्याय का अध्ययन किया। इस प्रकार आपने व्याकरण के अतिरिक्त न्याय और मीमांसा का भी अध्ययन कर लिया। इन दो शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात् अन्य दर्शनशास्त्रों में आपका प्रवेश स्वयमेव हो गया।

शास्त्रीजी वहुत कुशल तार्किक थे। शास्त्रार्थ में भी वे पूर्ण निष्णात थे। अध्य-यन समाप्त होने के बाद आपने अनेक अवसरों पर शास्त्रार्थ किया। आपकी भाषणशैली, विचार-पद्धति और प्रतिपादन कला प्रभविष्णु थी। शास्त्रार्थ में आपने

अच्छा यश प्राप्त किया। कुछ दिन के बाद आप से शास्त्रार्थ करने में बड़े बड़े पण्डित भी हिचकने लगे थे।

ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् गृहस्थाश्रम और अध्ययन के पश्चात् विवाह—यह क्रम है। शास्त्रीजी जब अध्ययन समाप्त कर चुके तब उन्होंने पं० बच्चाशास्त्री की पुत्री से विवाह किया और सद्गृहस्थ का जीवन व्यतीत करने लगे।

विद्या के आकर्षण से आप काशी आये। काशी में उस समय पं० काशीनाथ शास्त्री और पं० राजाराम शास्त्री अच्छे विद्वान् थे। आपने इन्हीं पण्डितों के शिष्यत्व में अपना अध्ययन जारी रखा। पं० राजाराम शास्त्री धुरन्धर व्याकरण शास्त्री थे। उनसे आपने परिष्कार सहित व्याकरण का अध्ययन किया।

काशिक-राजकीय-संस्कृत-विद्यालय के प्रारम्भिक यूरोपीय विद्वान् बड़े निष्पक्ष और पण्डित-संग्राहक थे। पं० बाल शास्त्री जिस समय काशी में अध्ययन कर रहे थे उस समय ग्रिफिथ महोदय उक्त विद्यालय के अध्यक्ष थे। ग्रिफिथ का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम सुविख्यात है। ये राजाराम शास्त्री के माध्यम से पं० बाल शास्त्री से परिचित तथा उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो चुके थे। इसलिये जब सांख्य अध्यापक का पद रिक्त हुआ तब उन्होंने पं० बाल शास्त्री को सादर विद्यालय में आमन्त्रित कर उन्हें उस पद पर नियुक्त किया। आपके विद्यालय में आने पर विद्यालय का क्रम ही दूसरा हो गया। अनेक विद्वान् आप से अध्ययन के लिये आने लगे। व्याकरण, न्याय, सांख्य तथा वेद के आप विशेषज्ञ माने जाने लगे। काशी की पण्डित मण्डली ने आपकी विद्वत्ता स्वीकार कर ली थी। अध्यापन के विषय में आप पूर्ण यशस्वी हुए। शीघ्र ही आप का यश भारतवर्ष में दूर दूर तक फैल गया और विद्यार्थी अध्ययन के लिये देश के कोने कोने से आने लगे।

शास्त्रीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आप अध्यापन में कुशल, भाषण में दक्ष, लेखन में चतुर और सम्पादन में सिद्धहस्त थे। अध्यापन में आपकी विशेषता जो बहुत कम शिक्षकों में पाई जाती है वह यह थी कि विद्यार्थी सरलता और सुगमता से शास्त्र में कौतूहल और उत्सुकता के साथ प्रवेश करता चलता था। प्रवेश में आयास उतना उसे अनुभव नहीं होता था। भाषण में आपका नाम अद्यावधि आदरपूर्वक लिया जाता है। आपका संस्कृत भाषा के ऊपर असामान्य अधिकार था। सुललित सुरभारती स्वाभाविक रूप से व्यक्त होकर अजस्र रसवर्षण करती

थी। आपका भाषण सरस सरल और भावपूर्ण हुआ करता था। यूरोपीय विद्वानों के सम्पर्क से उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी से भारत में नवीन प्रकार की भाषण-कला का प्रचार हुआ। यूरोपीय भाषणकला में अंगभंगियों की विशेषता है। भाषा के साथ साथ अंगभङ्गी विचार प्रदर्शन करती चलती है। प्राचीन कथावाचकों में कुछ ऐसी विशेषता दृष्टिगोचर होती है किन्तु भारतीय भाषणकला जो इन शताब्दियों में प्रवर्तित हुई उसमें वाग्वैभव का प्रदर्शन, तर्कपूर्ण विचारों का प्रतिपादन तथा भावों का उद्वेलन ही प्रायः दृष्टिगोचर हुआ। गर्जन-तर्जन और हाथ पैर का बहुत अधिक संचालन नहीं हुआ करता था। शास्त्रीजी के भाषण में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित हुई। शास्त्रीजी का भव्यवेष, विषय का शास्त्रीय विवेचन, गङ्गातरङ्ग के समान प्रसन्नभाषा का निरर्गल प्रवाह और सबसे बढ़कर प्रतिपादन की ऋजुता और सरलता मनमोहक होती थी।

संस्कृत भाषा के ग्रन्थराशि पर मध्ययुग और उसके पश्चात् संक्रान्ति युग में अन्धकार छा गया था। जब यूरोपीय विद्वानों की दृष्टि उन पर पड़ी तो उनका प्रकाशन करना पड़ा। इस प्रकाशन से एक नवीन 'शास्त्र' का जन्म हुआ जिसे आज 'आलोचनात्मक सम्पादनशास्त्र' कहते हैं। इसके सिद्धान्त संस्कृत के प्राचीन लेखकों ने भी स्वीकार किये थे। नीलकण्ठ महाभारत की टीका के प्रारम्भ में लिखते हैं कि उन्होंने विभिन्न स्थलों के पाठभेदों को देख, कोष से उनके अर्थों को समझ शुद्ध पाठनिर्णय किया है। किन्तु अब आवश्यकता पड़ने पर इन सिद्धान्तों का विशद विवेचन हुआ। पं० बालशास्त्री ने भी अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया और उनको 'रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल' के द्वारा प्रकाशित करवाया। इसके अतिरिक्त 'काशीविद्यासुधानिधि' में आपने अनेक ग्रन्थों का संशोधन कर प्रकाशन कराया था। भामती सहित 'शारीरक सूत्रभाष्य' पर अपनी टिप्पणी लिखी और उसको प्रकाशित कराई।

विद्या को उस काल के रक्षित राज्यों से बहुत संरक्षण मिला करता था। विद्याप्रेमी राजा अपनी सभा में विद्वानों का समादर किया करते थे। दूसरे धर्म का भी राजपरिवार में काफी प्रभुत्व था। अतएव विद्वान् धर्म की दृष्टि से भी आदृत होते थे। अध्ययनकाल में शास्त्रीजी को ग्वालियर राज्य से प्रोत्साहन मिला था। अब उत्तरापथ के अनेक राजाओं ने आपका सत्कार किया। मण्डीनरेश ने

आपसे दीक्षामन्त्र ही ले लिया था। इस प्रकार आप गुरुराज तो थे ही राजगुरु होने का भी श्रेय आपको प्राप्त हुआ।

श्लोक प्रसिद्ध है कि:—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु क्रियावांस्त्वतिदुर्लभः॥

आप पण्डित तो थे ही, वक्ता भी अच्छे थे और वक्ता ही नहीं आप क्रिया-कुशल भी थे। भौतिक यश प्राप्त करने के पश्चात् आपने आध्यात्मिक कार्यकलाप प्रारम्भ किये—(१) यज्ञकार्य (२) देवमन्दिरनिर्माण और (३) तीर्थाटन।

यज्ञ करना और कराना—ब्राह्मण के छः कर्तव्यों में ये दो भी हैं। यज्ञ की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यवन और शकों के आक्रमण से कुछ काल तक यह परम्परा विच्छिन्न सी रही। समुद्रगुप्त ने अश्वमेध आदि यज्ञों का फिर से आहरण किया। मुगलकाल में यह परम्परा में जो शैथिल्य आया उसको अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दू-पुनरुत्थान प्रवृत्ति ने ही किया। आजकल के तर्क ने फिर से यज्ञपरम्परा पर आघात किया है। शास्त्रीजी के समय हिन्दू-पुनरुत्थान प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं। उन्होंने स्वयं इन प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाया और स्वयं अनेक यज्ञ किये। आपके 'ज्योतिष्टोमयज्ञानुष्ठान' की चर्चा काशी में अद्यावधि होती है। सुनते हैं कि वैसा यज्ञ उसके पश्चात् आज तक नहीं हुआ। तात्कालिक अनेक राजा उसमें सम्मिलित हुये थे और धूमपूत वातावरण में बिखरी हुई श्री को देखकर मुग्ध थे। कहते हैं कि उस समय के सारे संस्कृत के पण्डित उस यज्ञ में सम्मिलित हुये थे। इसके अतिरिक्त और भी यज्ञ आपके द्वारा सम्पादित हुये थे। ज्योतिष्टोम यज्ञ उनका अन्तिम यज्ञ था और १९३७ वै. में सम्पन्न हुआ था।

सामगान के विषय में भी शास्त्रीजी की प्रशंसा सुनी जाती है। काशी में पं० विनायक शास्त्री के यज्ञ में उद्गाता बनकर आपने जैसा सामगान किया था वैसा सामगान श्रवण करने का अवसर पहले लोगों को कभी नहीं मिला था।

शास्त्रीजी ने कतिपय देवमन्दिरों का निर्माण करा कर उनमें सविधि देवताओं की स्थापना की थी। तीर्थयात्रा की अपनी परम्परा और अपना महत्त्व है। महत्त्व तो यह कि इससे देश में सांस्कृतिक एकता सुरक्षित रहती है और परम्परा तो इसको महाभारत के काल से अवश्य देखी जा सकती है। अशोक के शिलालेखों

से ज्ञात है कि अशोक स्वयं भगवान् बुद्ध के आविर्भाव स्थल लुम्बिनी-वन में दर्शनार्थ गये थे। शास्त्रीजी ने भारतवर्ष के प्रायः सभी धार्मिक स्थलों के दर्शन किये।

इस प्रकार बाल शास्त्रीजी ने अपने जीवन में अनेक अनुकरणीय कार्यों को सम्पादन करते हुये तैंतालीस वर्ष की वय में भौतिक लीला समाप्त की।

शास्त्रीजी की शिष्यपरम्परा अत्यन्त गौरवशालिनी है। आपके शिष्यों में महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री, म० म० पं० तात्याशास्त्री, म० म० पं० दामोदर शास्त्री, पं० श्रीरामशास्त्री तैलङ्ग, पं० हरिहरनाथ शास्त्री प्रमुख हैं।

आपके ग्रन्थ भी अनेक हैं जिनमें निम्नोक्त प्रमुख हैं—

१. वेदान्तसूत्रभाष्यभामती टिप्पणी। २. व्याकरणमहाभाष्य टिप्पणी।
३. सारासार विवेक। ४. बृहज्ज्योतिष्टोमपद्धति इत्यादि।

प्रश्न

१. 'बालशास्त्री ने अभ्युदय और निश्रेयस दोनों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया।' अपने विचार प्रकट कीजिये।

२. पं० बालशास्त्री का जीवनचरित संक्षेप में लिखिये।



महामहोपाध्याय पं० चित्रधर मिश्र

'माता क्रुद्ध होती हैं, भ्राता ताड़नायें देते हैं, ग्राम के सम्मानित व्यक्ति निन्दा करते हैं—ऐसे अनेक त्रास हैं किन्तु मैं आखेट नहीं त्याग सकता हूँ। कुत्ता के साथ सत्वर भाग कर खरगोश की शिकार में मुझे वहुत आनन्द आता है। गर्मी, सर्दी भय श्रम इत्यादि कुछ नहीं मुझे तव व्यापते हैं जब मैं शिकार के लिये निकलता हूँ'—यह आत्मवर्णन है मीमांसकमूर्धन्य महामहोपाध्याय पं० चित्रधर मिश्र के बाल्यावस्था का। यदि आपको सन्देह हो इस तथ्य में कि एक प्रकाण्ड विद्वान् जिसकी प्रखर बुद्धिरश्मियों से एक दिन अन्तर्वेदी और मगध प्रकाशित हो उठा था वह बाल्यावस्था में इतना आखेट-प्रिय और ग्राम में इतना अप्रिय था तो मैं अपने चरितनायक द्वारा रचित श्लोकों को ही प्रमाणस्वरूप नीचे उद्धृत कर देता हूँ—

माता क्रुध्यति तर्जति प्रतिदिनं भ्रातेति किं मे भयं-
ग्रामे मान्यजनोऽपि निन्दतितरामेतावता का क्षतिः।
शास्त्रं दैवतमुग्रकर्म सवया बन्धुश्च मे प्रीयता-
मित्येवं कथयन्नपेतसकलत्रासोऽहमासन्तदा॥
क्लेशं नागणयं शशादिहनने धावन् श्वभिः सत्वरं
रात्रिं नाकलयन् सरस्सु पतगप्राप्तौ निमज्जन्नहम्।
किं शीतं किमु चोष्णमस्ति किमु वा सर्पाद् भयं कः श्रमः
का वा कण्टक-वेदनेति सहसा हृष्टोऽभ्यगच्छन्न च॥

मानव-व्यक्तित्व बड़ा विचित्र है। 'कामरत' तुलसीदास में रामरति कहा सोई थी—कौन जानता है? किसको पता था कि कामुक बिल्वमङ्गल घटनाचक्र में पड़ रसिक शिरोमणि श्याम के गायक सूरदास बन जावेंगे? सुनते तो ये भी हैं कि निरक्षर कालिदास एकाएक सरस महाकवि के रूप में अवतीर्ण हो गये थे। तब कल का आखेट प्रिय, खरगोश के पीछे दौड़ने वाला चित्रधर आज मीमांसक-शिरोमणि, महामहोपाध्याय पं० चित्रधर मिश्र की जिनके स्वरूप से पाण्डित्य और वाणी से वैदुष्य टपकता था भूमिका में नाट्यमञ्च पर अवतीर्ण हो गया—इनमें क्या आश्चर्य?

पं० चित्रधर मिश्र का जन्म विक्रम संवत् १९०१ माघकृष्ण चतुर्दशी बुधवार को दरभङ्गा जिले में दलसिंगसराय स्टेशन के निकटवर्ती 'टभका' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता पं० बुचाई मिश्र परम धार्मिक, उदार और सरल ब्राह्मण थे। आपका वंश प्रख्यात सोदरपुरिये कुल[1] था।

आप बाणभट्ट के समान बाल्यकाल और प्रारम्भिक युवावस्था में विचरण और आखेट करते रहे और फिर एकाएक आपकी जीवनधारा मुड़ी जिसने आपको ज्ञान–मन्दाकिनी की गङ्गोत्री से स्वल्पकाल में ही विशाल–सागर–सङ्गम तक पहुँचाया।

प्रसिद्ध है कि **'काव्यं विना व्याकरणं न राजते, न काव्यमव्याकरणं विराजते।'** काव्य के लिये व्याकरण–ज्ञान की अपेक्षा होती है और काव्य के बिना व्याकरण 'शुष्को वृक्षः' है जो इन्धन का काम भले ही दे सके किन्तु पुरतः विलसित होकर

---

१. महामहोपाध्यायजी ने आत्मचरित कुछ श्लोकों में लिखा है। देशकाल से परे विद्यालोक में विचरण करने वाले भारतीय विद्वान् प्रायः आत्मवर्णन नहीं करते। यह आत्मचरित की प्रणाली नई है। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ कतिपय पद नीचे देता हूँ:—

सीता सा जयति प्रसिद्धिमगमद्देशो मदीयो यया
श्रीयुक्ता विक्टोरिया विजयते यच्छासिते भारते।
निःशङ्कं वनपर्वतादिषु मया भ्रान्तं स लक्ष्मीश्वरो
भूयो नन्दतु यं श्रितस्य सकलं सिद्धं ममाभीप्सितम् ॥ १ ॥
लब्धं जन्म मया विदेहविषये तत्रापि विप्रान्वये
विप्रेष्वप्यभवच्च सोदरपुरग्रामोपलक्ष्यं कुलम्।
तस्यावान्तरभेदकं पुनरभूद् ग्रामान्तरं दिग्घनम्
यच्छ्रौताग्निसमुत्थितैरनुदिनं धूमैः पुरा पावितम् ॥ २ ॥
मत्तातप्रपितामहैः पुनरितो ग्रामान्नवग्रामके
वासोऽकारि ततः पिता मम पुनर्मातामहस्यास्पदे।
लब्धद्मष्टभकाभिधे नरहरिक्ष्मापालसंशासिते
वास्तव्योऽजनयद् द्वितीयतनयं मां कीर्तिमत्यां कृती ॥ ३ ॥

परिशिष्ट

गये और न दरभङ्गा। सरस्वती के लिये श्री व्याकुल हो उठी। दरभङ्गाधीश्वर विद्वन्मूर्धन्य चित्रधर के सामने प्रणत हुये। आग्रह पर आग्रह और निमन्त्रण के बाद दूसरा निमन्त्रण। स्नेह से झुके, लोकोपकार की भावना के कारण डिगे, चित्रधर दरभङ्गा के राजपण्डित हो गये। दरभङ्गा नरेश राज्यारोहण के अवसर पर आपको 'धौतवस्त्र' समर्पित कर स्वयं यश से धवलित हो गये। उसके बाद आप दानाध्यक्ष भी रहे।

विद्या में एक विचित्र आकर्षण होता है। यह आकर्षण अनिवार्य होता है। दरभङ्गा की राजसभा प्रारम्भ से ही विद्वानों से सुशोभित रही है किन्तु पं० चित्रधर मिश्र के आ जाने पर शास्त्र के पठन-पाठन और विवाद के क्रम ने दूसरा ही रूप धारण कर लिया। सप्ताह में प्रति सोमवार सभास्थान में शास्त्रविचार हुआ करता था। शास्त्रविचार के लिये आये हुए विद्वान् सत्कृत और पुरस्कृत भी किये जाते थे। इस प्रकार से विद्याप्रचार नियमित और व्यवस्थित ढङ्ग से चलने लगा।

विद्यापुष्प का कीर्ति-सौरभ चित्तापकर्षक होता है। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित भारत-सरकार ने आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि समर्पित की और भारतधर्म महामण्डल ने आपको 'मीमांसकशिरोमणि' की पदवी दी— **'सौभाग्यं तस्य देशस्य यत्र मिश्रशिरोमणिः'**। पटना की पण्डितमण्डली ने आपको 'विद्यावारिधि' रूप से जाना।

'यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्'। आपका पाण्डित्य न तो वाग्विलास ही था और न केवल सिद्धान्तों-विचारों का उपजृम्भण। संस्कृत-साहित्य के प्रचार के लिये आप सतत क्रियाशील थे। बङ्गाल-बिहार-उत्कल प्रान्तीय संस्कृतशिक्षा-परीक्षा समिति के आप सक्रिय सदस्य थे। तदनन्तर निर्मित बिहारोत्कल संस्कृत समिति को आपका साहाय्य प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं, सद्योजात काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की अनेक समितियों को आपने हस्तावलम्बन दिया। आपके सिद्धान्त आपकी क्रियाओं से व्याख्यात होते थे।

'दानानामुत्तमं दानं विद्यादानं प्रचक्षते'—दानाध्यक्ष पं० चित्रधर मिश्र की तुष्टि धनदान से ही नहीं हुई। समाज के प्रासाद की यदि नींव 'श्री' है तो सरस्वती है 'कलश'। 'धन' से समाज पुष्ट होता है तो विद्या से 'तुष्ट'। 'उदर' के 'पश्चात्' आपने समाज के 'मुख' की ओर ध्यान दिया। रमेश्वरलता संस्कृत

विद्यालय दरभंगा में आप अध्यक्ष नियुक्त हुये। आपके अध्यापन-कौशल के कारण विद्यालय की ख्याति बहुत दूर दूर तक पहुँची और काशी, नदिया इत्यादि स्थानों से विद्यार्थी पढ़ने के लिये आने लगे। वृक्ष की पहिचान उसके फलों से होती है। गुरु की योग्यता उसके शिष्यों के आधार पर जानी जा सकती है। गुरु यदि महान् पण्डित हो किन्तु शिष्यों में विद्या-संक्रान्त नहीं कर सकता है तो उसका वैदुष्य अध्यापन-कार्य के लिये व्यर्थ ही तो है। सफल अध्यापक वही हो सकता है जो अपनी ज्ञाननिधि को शिष्यों में संक्रान्त कर सके। आपकी शिष्य-परम्परा आपके योग्यता की उज्ज्वल परिचायक है। इस प्रसङ्ग में क्या यह कहना ही यथेष्ट न होगा कि प्रसिद्ध न्याय-इतिहास के लेखक अनेक देशी विदेशी भाषाओं के पण्डित महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण आपके शिष्य थे?

धर्म की संस्थापना के लिये केवल 'योगेश्वर' से काम नहीं चलता, 'धनुर्धर पार्थ' की आवश्यकता होती है। अधर्मनाश के लिये भी 'नाथ साथ धनु हाथ हमारे' होना आवश्यक है। यहाँ सरस्वती भी थी और शक्ति भी। पं० चित्रधर मिश्र थे तो साथ में दरभङ्गाधीश्वर रमेश्वर सिंह भी। अतएव धार्मिक कार्य अनेक सम्पन्न हुये। कहने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि—

नाध्यापयिष्यन् निगमान् श्रमेणोपाध्यायलोका यदि शिष्यवर्गान्।
निर्वेदवादं किल निर्वितानमुर्वीतलं हन्त तदाभविष्यत्॥

इस प्रकार कार्य करते करते शीर्ण जीर्ण हो चला। वार्धक्य आया। वैराग्य बढ़ा और आपने सामाजिक कर्तव्यों से विदा मांगी। बहत्तर वर्ष की आयु में आप कार्योपरत हुये। कार्यमुक्ति का सूचना प्राप्त करने पर दरभङ्गानरेश ने लिखा[1] कि 'मेरे तथा मेरे भाई के द्वारा सत्कृत पदाधिकारी के कार्योपरति से मुझे अत्यन्त दुःख है। वार्धक्य के कारण वे अब सक्रिय न रह सकेंगे ऐसा मैं मानता हूँ।

---

1. 'I am very sorry indeed to lose the services of an old and faithful servant whom my brother and I always held in highest respect. but. I recognise that his old age will prevent him from continuing any active work in future and that he intends to follow Ayache. Dubey's example'.

वे अब अयाची उदाहरण का अनुवर्त्तन करेंगे।'

'अधीतमध्यापितमर्जितं यशो न शोचनीयं किमपीह भूतले।
अतः परं श्रीभवनाथशर्म्मणो मनोमनोहारिणि जाह्नवीतटे ॥'

इस प्रकारः—

शास्त्राण्याकलितानि शिष्यनिवहा अध्यापिता यत्नतो
लब्धं वस्त्रयुगं विदेहनृपतेर्वैदुष्यसंसूचकम्।
कीर्तिर्दिक्षु निवेशिता सुचरितैर्लक्ष्मीश्वरः सेवित-
स्तीर्थान्यप्यटितानि नित्यविधयः सम्पादिताः श्रद्धया ॥

शास्त्रों को अध्ययन किया और उसके पश्चात् शिष्यपरम्परा को बड़े लगन के साथ पढ़ाया। पाण्डित्य के प्रतीक 'धौतवस्त्र' मिथिलेश से प्राप्त किये। आपने सुन्दर कार्य से सारी दिशाओं में अपनी कीर्त्तिकौमुदी फैलाई। मिथिलेश लक्ष्मीश्वर और मैथिलीश लक्ष्मीश्वर को तुष्ट किया। तीर्थों में भ्रमण किया और नित्य नैमित्तिक कार्यों का सम्पादन किया।

भारतभूषण मदनमोहन मालवीय के समान 'गुणग्राहक' कहाँ मिलेगा? उनकी क्या सूक्ष्मदृष्टि थी दूसरों की प्रतिभा जानने के लिये और क्या लगन थी सारे पण्डितरत्नों से विश्वविद्यालय प्रकाशित करने की? भारतभूषण ने पाण्डित्य की कीर्त्ति सुनकर पं० चित्रधर मिश्र को भी संस्कृत महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये निमन्त्रण दिया। वार्धक्य से जीर्ण शरीर हो जाने के कारण पं० चित्रधर मिश्र भारतभूषण की इच्छा पूर्ण न कर सके।

निम्नोक्त पद्यों से महामहोपाध्याय के मानस की झांकी मिलेगीः—

मैत्री साधमकारि सद्भिरफलं वैरं न केनापि च
छिद्रं कस्यचिदप्यसूचि नृपतौ नो किन्तु मिथ्या गुणाः।
एवं नीतिपुरस्सरं बहुतरं नीत्वोन्नतं स्वं वयो-
वार्धक्ये शिवसेवनात् परतरं कार्यं न विज्ञायते ॥
साक्ष्यं न क्वचिदप्यदायि नृपतेः कार्यालये वादिता
नाधायि प्रतिवादिताऽपि च मया केनापि सार्द्धन्तथा।
लाभौघेन च नान्वभावि पतनक्लेशोऽर्थिता संकटे
नो वा कामशराहतेन शरणं प्रापादि वामापरा ॥

आपकी रचनायें:—

१. मीमांसासारसंग्रह ।

२. मैथिलसंस्कृतकविनामावली ।

३. उपलक्षणसंग्रह ।

आपकी शिष्य-परम्परा के गौरव की सूचना निम्नोक्त नाम स्वयं कर देंगे। महामहोपाध्याय डा० सर गङ्गानाथ झा आपके ही शिष्य थे। महामहोपाध्याय पं० बालकृष्ण मिश्र जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राच्य विद्या विभाग के अध्यक्ष थे आपके ही चरणों के पास बैठकर अध्ययन किया। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक ख्यातनामा विद्वान् हुये जिनसे पं० चित्रधर मिश्र की विद्या प्रकाशित हुई। म० म० पं० मुकुन्द झा बक्शी, पं० बालबोध मिश्र इत्यादि पं० चित्रधर के कीर्त्तिस्तम्भ हैं। वि० सं० १९७७ में महामहोपाध्याय पं० चित्रधर मिश्र के दिवङ्गत हो जाने पर आपके शिष्य दीवान बाबू श्री कामेश्वर सिंह जी ने आपके निधनस्थान पर शास्त्रीय विधि से शिवमन्दिर की स्थापना की और अद्यावधि उस मन्दिर में शिवपूजन और राजभोग व्यवस्था चल रही है। आपका स्मारक 'चित्रधर पुस्तकालय' भी आपके ग्राम में संस्थापित है।

प्रश्न

१ 'कामरत तुलसीदास में रामरति कहाँ सोई थी—कौन जानता है ?' का पं० चित्रधर मिश्र के प्रसङ्ग में पल्लवन कीजिये।

२ 'मीमांसा' का क्या अर्थ है ? उसके अध्ययन का महत्त्व प्रदर्शित कीजिये।

३ पं० चित्रधर मिश्र पर एक संक्षिप्त चरितात्मक टिप्पणी लिखिये।



महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री

[जन्म वि० सं० १९०४, निधन १९७५]

वर्षों पूर्व की बात है। काशी के पास ही 'उन्दी' नाम के एक छोटे से गाँव में संवत् १९०४ वैक्रम में पं० रामसेवक मिश्र के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पण्डितजी के इसके पूर्व चार बच्चे उत्पन्न होते ही मर गये थे। इसलिये पुत्र की उत्पत्ति के अवसर पर उनको सुधास्वादन का सुख और गरलपान का दुःख युगपत् मिला करता था। ज्योंही समाचार प्राप्त हुआ कि पुत्र उत्पन्न हुआ, पण्डितजी प्रसन्नवदन शिवस्तुति पढ़ने लगे। इसी समय सूतिकागृह में सहसा कोलाहल हुआ। शिवपाठ करते करते पण्डितजी ने ज्यों ही कोलाहल सुना, शरीर शिथिल पड़ने लगा, चिन्ता व्याप्त होने लगी और अनिष्ट की आशङ्का हुई। सशङ्क दौड़े सूतिका गृह की ओर। विस्मय-विमुग्ध नारियाँ खड़ी थीं सद्योजात शिशु को घेरे हुये। शिशु की जिह्वा पर एक श्वेत त्रिशूल का चिह्न और विशाल ललाट पर चन्द्रमा का लक्षण था। पण्डितजी स्वयं स्तब्ध हो गये। जब वाणी मिली चिल्ला उठे, **'साक्षाच्छङ्करावतारोऽयमर्भको न कथमप्यन्यथा शङ्कितव्यः'**। शिव ही कुमार के रूप से अवतरित हुये थे इसलिये उनकी आख्या रखी गई—शिवकुमार।

घर में एक लड़का, दुलार से बढ़ा और प्यार से फूला। पांच वर्ष तक वह निरन्तर सुख-श्री का सम्वर्द्धन करता रहा। छठवें वर्ष पण्डित रामसेवक मिश्र संसार की असारता-चिन्तन करते करते दिवङ्गत हो गये। पितृविहीन बालक माता के स्नेहाञ्चल की छाया में बढ़ने लगा। इस समय उसकी दो प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती थीं। अवसर मिलने पर वह बालुकालिङ्ग बनाकर एकान्त में और सबसे छिपकर उनकी पूजन करता और द्वितीय चुपचाप जाकर पिता की पुस्तकों के वेष्टन को खोलकर उनके पढ़ने का नाट्य करता। बचपन में दृष्टिगोचर ये दो प्रवृत्तियाँ ही महामहोपाध्याय शास्त्रार्थशार्दूल पं० शिवकुमार शास्त्री के जीवन को समझने की दो कुंजियाँ हैं। उस समय ही बालक अपने कृत्यों से देखने वालों को बता रहा था कि वह शिवभक्त विद्वान् बनने की प्रवृत्ति और क्षमता रखता है।

इन प्रवृत्तियों का अध्ययन कर चतुर निर्देशक शीघ्र ही बालक को उचित ढंग से इन प्रवृत्तियों को बढ़ाने और तदनुसार कार्य करने की ओर प्रेरित करता।

किन्तु परिस्थितियाँ दूसरी ही थीं। नौ वर्ष की अवस्था में ही बालक शिवकुमार काकी के साथ बेतिया चला आया। कुछ काल वहाँ पं० वाणीदत्त चतुर्वेदी से लघुकौमुदी पढ़कर घर लौट आया। यहाँ इनके काका ने गाय और भैंस को चराने का कार्य सौंपा। अतृप्त आकांक्षायें प्रेरित करती शिशु को और वह तालाब के पास जाकर बालुकालिङ्ग बनाकर पूजन करता अथवा फिर अपनी पिता की पुस्तकों को पढ़ने का अभिनय। गाय-भैंस के प्रति असावधानी देखकर काकाजी बालक शिवकुमार के प्रति सावधान हो गये। एक दिन जब शिवकुमार ग्रन्थपाठ का अभिनय कर रहे थे उनके काका कहने लगे, 'मूर्ख! गाय-भैंस न चराकर यहाँ किताबें पढ़ रहा है कि जैसे साक्षात् पतञ्जलि हो।' धिक्कार और तिरस्कार ने अतृप्त आकांक्षाओं से प्रेरित प्रवृत्ति को और उकसाया। बालक वहाँ से चुपचाप हट गया। दिन भर चुपचाप बैठा रहा और रात्रि में बिना किसी को बताये काशी की ओर पैदल चल पड़ा। अतृप्त आकांक्षा उसे बढ़ा रही थी अध्ययन की ओर तथा तिरस्कार में कहा गया 'पतञ्जलि' उसका आदर्श बन बैठा था। अतएव काशी आकर पता पूछते पूछते पहुँचा संस्कृत राजकीय विद्यालय में और 'पतञ्जलि' के अध्यापक के विषय में जानकर उपस्थित हुआ व्याकरणाध्यापक पं० श्रीदुर्गादत्त शास्त्री की सेवा में। इस प्रकार एक आकांक्षा को व्यक्त होने का अवसर मिला। उसके देवाधिदेव जिनके पार्थिव-लिङ्ग का पूजन अपने गाँव में करता था, वे काशीपुराधीश्वर विश्वनाथ भी तो यहीं थे। इसलिये राजकीय महाविद्यालय में अध्ययन के पश्चात् शिवकुमारजी मणिकर्णिका घाट पर स्नान करते और वहाँ से जल ले जाकर 'विश्वनाथजी' को चढ़ाते। यब नियम उनका जन्मपर्यन्त रहा। इस प्रकार बालक की दोनों प्रवृत्तियाँ धीरे धीरे अपने को विकसित करने लगीं। इस प्रकार ये कुछ वर्ष अध्ययन करते रहे।

सूचना पाकर काका और माता आपको लौटा ले जाने के लिये काशी आईं। पर्वत प्रखर सूर्य के प्रचण्ड आतप से उतना ही अविचिलित रहता है जितना उमड़ घुमड़ कर बरसने वाली घनाली से। काका का धिक्कार और माँ का प्यार उनको अपनी इच्छा-पूर्त्ति से विचलित नहीं कर सका।

आप अठारह वर्ष में ही व्याकरण के पूर्ण पण्डित हो चुके थे इसलिये संस्कृत कॉलेज के अन्य विद्वानों से अन्य विषयों के अध्ययन के लिये प्रवृत्त हुये। नैयायिक

शिरोमणि पं० कालीप्रसाद से न्याय पढ़ा और दार्शनिक-प्रवर पं० श्रीगणेश श्रौति से खण्डनखण्डखाद्य का अध्ययन किया। ब्रह्मवेत्ता स्वामी विशुद्धानन्दजी से 'अद्वैत-सिद्धि' और पूर्वमीमांसा को जाना। रत्न में यदि चमक है तो वह छिपेगा कैसे? पं० बालशास्त्री ने जब आपकी विद्वत्ता देखी तो आपको बुलाया और कहा कि आप पं० राजाराम शास्त्री से व्याकरण का अध्ययन कुछ और कर लें। पं० बालशास्त्री के पूज्य गुरुचरण पं० राजाराम शास्त्री ऐसे प्रकाण्ड वैयाकरण थे कि आज तक काशी में वैसे वैयाकरण कम हुये होंगे। इस समय वे जरा-जर्जर हो चुके थे। इसलिये पं० शिवकुमार शास्त्री को बालशास्त्री रानाडे से अपने ज्ञानयज्ञ की पूर्णाहुति कराई।

इस प्रकार २६ वर्ष तक आपने काशी में विद्याभ्यास किया। आपका विद्यार्थी जीवन का संयम और आचार आदर्श था। संस्कृत-प्रणाली में सदाचार पर वैसे ही बहुत जोर है। कहा गया है कि—

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः नियन्त्रितः।
अयन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥

किन्तु ये सिद्धान्त क्रिया में बहुत कम उतर पाये। पतञ्जलि महाभाष्य के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि उस समय भी 'खट्वारूढ', 'काकतीर्थ', 'कम्बलचारायणीय' और 'कुमारी दाक्षा' विद्यार्थी रहा करते थे। क्षेमेन्द्र ने भी अपने काल के विद्यार्थियों को यथार्थ जीवन का जो चित्र खींचा है वह किसी भी प्रकार से आदर्श नहीं माना जा सकता। पिछली शताब्दी के विद्यार्थी भी साधारणतः अपवाद नहीं थे। किन्तु पं० शिवकुमारजी का जीवन इस विषय में आदर्श था।

पं० शिवकुमारजी की विद्या का कीर्त्ति-सौरभ फैला। फलस्वरूप आप काशी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में नियुक्त हो गये। इस काल में आपकी कीर्त्ति सुनकर बहुत दूर दूर से विद्यार्थी आकर आपके शिष्यत्व में पढ़ने लगे। राजकीय संस्कृत विद्यालय में आप बहुत दिनों तक नहीं रहे। डा० वेनिस ने जो उस विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे अनेक बार प्रयत्न किया कि पं० शिवकुमार शास्त्री विद्यालय में पुनः आजावें किन्तु वे अकृतकार्य रहे। 'महामहोपाध्याय' की पदवी मिलने पर, गवर्नर ने भी अनुरोध किया किन्तु त्यक्त पद फिर स्वीकृत नहीं हो सका।

इसी समय, एक वरयात्रा में आप दरभङ्गा पहुँचे। वहाँ दरभङ्गा के महाराज ने आपकी पाण्डित्य–कीर्त्ति सुनी और अलौकिक शास्त्रार्थ प्रतिभा देखी। विस्मित नरेश महाराजाधिराज श्री लक्ष्मीश्वर सिंह ने आपका बड़ा सम्मान किया और अपने विद्यालय में सम्मान के साथ नियुक्त किया। स्वामी विशुद्धानन्दजी के अनुरोध करने पर तथा शास्त्रीजी की काशी में रहने की बलवती उत्कण्ठा देखकर महाराज ने काशी में दरभंगा विद्यालय की स्थापना कर आपको वहाँ का अध्यापक बनाया। जब तक शास्त्रीजी जीवित रहे, आप दरभङ्गा विद्यालय के अध्यापक बने रहे। इस समय दरभङ्गा विद्यालल में महामहोपाध्याय सुधाकरजी, महामहोपाध्याय पण्डित तात्या शास्त्री, म० म० पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण आदि लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् अध्यापन कर रहे थे।

काशीनिवासबहुलालसमानसोऽसौ तत्याज वृत्तिमपि चार्द्धसहस्रमुद्राम् ।

आपको अनेक स्थानों से अध्यापक–पद के लिये निमन्त्रण आये किन्तु काशी की विद्वन्मण्डली तथा विश्वनाथ–सानिध्य के प्रेम ने आपको यहां से हटने नहीं दिया। महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह महोदय ने लार्डकर्जन की वायसराय–नियुक्ति के अवसर पर कलकत्ता में स्वागत समारोह आयोजित किया। इस समारोह में काशी के पण्डितों का प्रतिनिधित्व करते हुये पं० शिवकुमार शास्त्री भी सम्मिलित हुये थे। रत्नपारखी आशुतोष मुखर्जी उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे। आपने प्रमथनाथ तर्कभूषण के माध्यम से पं० शिवकुमार शास्त्री से अनुरोध किया कि आप ५००) मासिक वेतन पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में आजावें किन्तु काशिकास्नेहाबद्ध शिवकुमार जी ने कलकत्ता जाना सविनय अस्वीकृत कर दिया और ५०) मासिक वेतन पर दरभंगा विद्यलया में पढ़ाते रहे।

आपका अध्ययन–अध्यापन क्रम निरन्तर चलता रहता। पढ़ने वाले विद्यार्थियों का ताँता निरन्तर लगा रहता था। गङ्गास्नान को जाते समय रास्ते में, स्नान के पूर्व तैल लगाते समय, सांध्य–वेला में भ्रमण के समय भी यह क्रम चलता रहा। पण्डित, सामन्त और सेठ भी आपके यहाँ पढ़ने, दर्शन करने और दानसेवा करने उपस्थित होते थे।

'कुमारो वादि विजयी'

शास्त्रार्थ की परम्परा आप के युग तक जीवित थी। शास्त्रार्थ में आपने अद्वि-

तीय यश प्राप्त किया। महामहोपाध्याय कैलासचन्द्र शिरोमणि की मध्यस्थता में महामहोपाध्याय पं० रामधन तर्कपञ्चानन महोदय के साथ शास्त्रार्थ किया जिसमें आपने पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त की। शास्त्रार्थ का विषय था--द्वैताद्वैतविवेचन। इसी प्रकार पुनः पैंतीस वर्ष की अवस्था में आपने प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय रासमोहन सार्वभौम के साथ शास्त्रार्थ-विचार में अतुलनीय यश प्राप्त किया। नाथद्वारपीठाधिपति भारतमार्त्तण्ड श्री गट्टूलाल महोदय के साथ भी आपने शास्त्रार्थ किया और उन्हें पराजित किया। इस प्रकार उस समय के अनेक शास्त्रार्थ महारथियों को परास्त कर आपने प्रचुर यश प्राप्त किया। भारत-शासक आपको महामहोपाध्याय की पदवी दी। शृङ्गगिरिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य आपको 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-पण्डितराज' की पदवीं से विभूषित किया और तत्प्रमापक एक स्वर्णपदक भी समर्पित किया। वामरा के राजा ने आपको 'अत्रैव विद्यारसः' की उपाधि समर्पित की। पञ्जाब में भी आपका विमल यश फैला हुआ था। एक बार लाहौर में वहां की पण्डितमण्डली ने आपका अभूतपूर्व स्वागत किया। उस स्वागत समारोह में महामहोपाध्याय पण्डित शिवदत्त दाधिमथ भी सम्मिलित थे। वहीं पर नागरिक जनता के आयोजन से एक विशाल पण्डाल में सर अतुलचन्द्र चट्टोपाध्याय के सभापतित्व में आपको बड़े सम्मान के साथ एक अभिनन्दनपत्र समर्पित किया गया।

शास्त्री जी निधन के तीन वर्ष पूर्व से ही पक्षाघात के कारण विकल थे। वि० संवत् १९७५ में अन्ततः अपने इहलीला समाप्त की।

आपकी रचनायें:—

१. यतीन्द्रजीवन चरितः--यह एक काव्यग्रन्थ है। इसमें योगिराज भास्करानन्द स्वामी का जीवन चरित वर्णित हैं। जीवनचरित के माध्यम से इसमें षड्दर्शनों का विवेचन किया गया है। उदाहरणार्थः--

अथ चेत् सदपि प्रकाशितं करणैः कर्तुमिहेहते जनः।
नियमात् सति जन्म तेऽस्ति तत् कथमाविर्भवनं न सद् भवेत्॥
असतोऽपि तथा विचारणे न च सुस्था भवति जनिक्रिया।
वद दण्डभृदादितः कुतो घट उत्पद्यत एव नो पटः॥
यदि शक्तिविशेष इष्यते स च कार्येण विशेष्यते न वा।
प्रथमे त्वसता कथं तथा चरमे तेन कथं व्यवस्थितिः॥

कणमक्षमतं परीक्ष्यते न विचारं सहते तदण्वपि ।
परमाणुमयं हि कारणं जगतो वक्ति न चास्य संभवः ।।

बड़े सुन्दर सरस छन्दों में दार्शनिक विवेचन के साथ-साथ मार्मिक सूक्तियों का यह स्तवक है । एक और उक्ति देखियेः--

दिने दिने कालफणी प्रकोपं कुर्वन् समागच्छति सन्निधानम् ।
निपीतमोहासवजातमादो न भीतिमायाति कदापि कोऽपि ।।

२. लक्ष्मीश्वर प्रताप :--यह भी एक काव्यग्रन्थ है । इसमें वर्तमान दरभङ्गा नरेश के वंश का महेश ठक्कुर से लेकर लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर तक का वर्णन है ।

३. शिवमहिम्नस्तोत्र की टीका (अपूर्ण)

४. परिभाषेन्दुशेखर की " " ।

५. लिङ्गधारणचन्द्रिका ।

शिष्यपरम्परा :—

१. महामहोपाध्याय पं० हाराणचन्द्र भट्टाचार्य :--आप अपने समय के धुरन्धर वैयाकरण थे । व्याकरण शास्त्र में आपकी प्रतिभा बेजोड़ थी ।

२. विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा :--आपका जीवनवृत्त इस पुस्तक में ही अन्यत्र प्राप्त होगा ।

३. डाक्टर गङ्गानाथ झा :--जीवनवृत्त इस पुस्तक में अन्यत्र देखिये ।

४. म. म. पं. जयदेव मिश्र :--जीवनवृत्त इस पुस्तक में ही प्रकाशित है ।

—०○○—

म० म० मानवाह्रि पं० गङ्गाधर शास्त्री सी. आई. ई.

[जन्म वि० सं० १९१०, निधन १९७०]

बड़ी विशाल सभा थी--एक विचित्र अवसर था। शतावधानी गङ्गाधर शास्त्री की परीक्षा होनी थी। काशी के गण्यमान्य विद्वान् उपस्थित थे। सभासद अत्यन्त उत्कण्ठित थे। अन्त में शास्त्री जी आये। भव्य वेष ने दर्शकों को प्रभावित किया। भारतमार्त्तण्ड श्रीगट्टूलाल शास्त्री ने आपको समस्या दी:--

बभौ मयूरो लवशेषसिंहः।

समस्या भी विलक्षण। देवनागरी के अन्त्याक्षर 'ब' से 'ह' तक समस्या में थे। नियम यह था कि देवनागरी लिपि के 'अ' से 'फ' तक सारे वर्ण क्रम से आवें और श्लोक सार्थक हो तथा शीघ्र रचा जावे। आश्चर्यविस्फारित नेत्रों से दर्शकों ने देखा और विस्मित श्रोताओं ने सुना शास्त्री जी को तत्क्षण निम्न श्लोक पाठ करते हुये:--

अनेकवर्णक्रमरीतियुक्तः कखागघाङच्छजझा ञटौ ठः।
अडण्ढणस्तोऽथ दधौ न पम्फुल् बभौ मयूरो लवशेषसिंहः॥

श्लोक सार्थक[1] है। सब दंग हो गये।

ऐसे थे पं. गङ्गाधर शास्त्री। आपका जन्म बंगलोर के पास 'यसरगद्दा' नामक स्थान में विक्रमसंवत् १९१० में हुआ था। आपके पिता का नाम नृसिंह शास्त्री था। नृसिंह शास्त्री के माता-पिता का देहावसान आपकी शैशवावस्था में ही हो गया

---

१ श्लोक की व्याख्या इस प्रकार है:--

सपरिकरस्य शिवस्य वाहनेषु कतमो वर्षासु मोदते इत्येवं पृष्टः कोऽप्युत्तरयति, अनेकेति। अथ निदाघोत्तरम्, अनेकवर्णानां क्रमरीत्या युक्तः पीतनीलादिविविधवर्णविशिष्टः कखागघाङा कखेन हासेन अनायासेन इति यावत्, अङ्गां कुटिलगामिनां सर्पाणाम् अर्घं भक्षणरूपमञ्चति, पूजयत्याद्रियत इति तादृशः, अच्छं शोभनं जातो यो भूषणरूपः यस्य सोऽच्छजझः, आनां विराविणां, टं ध्वनिं स्वरमाधुर्येण ठति प्रतिध्वन्ती तिरस्करोति यस्तथाभूतः, अडण्ढणोऽचपलः, लवौ न्यूनौ नानावर्णवत्वादिगुणैः शेषसिंहौ यस्मात्तादृक् मयूरोऽपरपक्षिहंसादिवत्, तः क्षीणतां खेदमिति यावत्। न दधौ, प्रत्युत पम्फुल्ल सन् प्रमोदातिशयं भजमानो बभौ।

था। फलस्वरूप शास्त्री जी अपने गांव को छोड़ 'बंगलोर' में अपने मामा के यहां चले आये। यहां आपने मीमांसा और कृष्णयजुर्वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया। तदनन्तर अठारह वर्ष की अवस्था में नृसिंहशास्त्री दर्शन के अध्ययन की आकांक्षा से काशी चले आये। यहां आपने पहले न्याय और वेदान्त का अध्ययन किया और उसके बाद साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। प्रतिभाशील विद्वान् थोड़े दिनों में ही समादृत हो गये। काशीनरेश श्रीमान् ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के सभापण्डित हो गये।

गङ्गाधर शास्त्री उपर्युक्त नृसिंह शास्त्री के पुत्र थे। नाम तो आपका 'सुब्रह्मण्य' था किन्तु गङ्गादशहरा के दिन जन्म होने के कारण आपकी आख्या गङ्गाधर ही पड़ गई। सर्वत्र आप इसी नाम से विख्यात हुये। उदीयमान बालक ने अपनी प्रतिभा का परिचय शैशव में ही देना प्रारम्भ कर दिया था।

जब गङ्गाधर तीन ही वर्ष के थे कि इनकी माता का देहान्त हो गया।

दुर्दैवात्तस्य जननी मानिनं तं त्रिहायनम्।
विसृज्य दुग्धमुग्धास्यं सतीलोकमुपागमत्॥

चौलकर्म के पश्चात् बालक की शिक्षा प्रारम्भ हुई। शीघ्र ही मेधावी शिशु ने लिपि और गणना सीखने के पश्चात् काव्य-कोश का अध्ययन आरम्भ किया। आठ वर्ष की अवस्था में जब बालक का उपनयन संस्कार हुआ था तब गङ्गाधर की काव्य में गति होना प्रारम्भ हो गया।

उपनयन संस्कार होने के बाद गङ्गाधर शास्त्री उन दिनों के प्रसिद्ध वैदिक पं. श्री बालकृष्ण भट्ट की पाठशाला में प्रविष्ट हुये। सोलह वर्ष की अवस्था में आप वेदाङ्ग, श्रौत-स्मार्त्त-कर्मकाण्ड और काव्य में निपुण हो गये। उसके पश्चात् वैयाकरणचक्रवर्ती पं. राजारामशास्त्री के यहां आप व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने लगे। शास्त्री जी ने मेधावी और प्रतिभाशाली छात्र से सन्तुष्ट होकर गङ्गाधर को परिष्कार सहित व्याकरण, धर्मशास्त्र, सांख्य-योग और वेदान्त पढ़ाया। इस समय से ही गङ्गाधर की ख्याति बढ़ने लगी। पं. नारायण शास्त्री खिस्ते उदीयमान विद्वान् के विषय में लिखते हैं:-

अनेकविबुधार्चितः कविनिवेषिताङ्घ्रिः पुन-
र्गुरुप्रणयिमानसोऽधिगतसत्यधामोज्ज्वलः।

सभासु चतुराननः सततभारतीभासुरोऽ-
प्यसौ न विधिरद्भुतं भुवि विभाति गङ्गाधरः ॥

संवत् १९३२ विक्रम में पण्डित राजारामशास्त्री का देहावसान हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् आप का विवाह भी हो गया। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट और विद्वानों द्वारा समादृत होने पर भी विद्यार्जन की सतत लालसा ने आपको पण्डित बालशास्त्री रानाडे के पास पहुँचाया। बालशास्त्री उस युग के अत्यन्त समादृत विद्वान् थे और गङ्गाधर की विद्वत्ता में भी प्रौढ़ि आना प्रारम्भ हो गई थी इसलिये बालसरस्वती के सामने गङ्गाधर द्रोणाचार्य के सामने अर्जुन के समान दिखाई देते थे।

द्रोणाचार्यस्य पुरस्तादर्जुन इव चापवेदनिष्णातः।
श्रीबालशास्त्रिपुरतो रेजे गङ्गाधरस्तादृक्॥

अध्यापन के लिये आवश्यक है प्रथमतः विशिष्ट वैदुष्य और द्वितीयतः विद्यार्थियों में ज्ञान-संक्रान्त करने की कला। ये दोनों वस्तु असाधारण रूप में उपलब्ध थीं इसलिये बालशास्त्री के सामने ही पं. गङ्गाधर शास्त्री ने छात्रों को पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। विविध विषयों के अनेकों विद्यार्थी पढ़ने के लिये शास्त्री जी को घेरे रहते थे। आपके शिष्यों के द्वारा आपके पाण्डित्यपूर्ण अध्यापन-कला की कीर्त्ति चारों ओर फैलने लगी। धर्मशास्त्रीय व्यवस्था में भी आप प्रख्यात हो गये थे। बालसरस्वती के जीवन काल में ही आपने गुरु के कर्मभार को वहन करना आरम्भ कर दिया था।

विद्या-बुद्धि की कीर्त्ति-सुगन्ध सर्वत्र फैलना प्रारम्भ हो गई। १८७९ ई० में काशिकराजकीय संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य डा. थीबो ने आपको महाविद्यालय में साहित्य और दर्शन का प्रधानाध्यापक बनाया।

शास्त्री जी अद्भुत व्याख्याता थे। आपके संस्कृत के व्याख्यान अत्यन्त मनोरञ्जक होते थे। शास्त्रार्थ में भी उस समय शास्त्री जी अप्रतिम थे। एक बार बम्बई के शतावधानी प्रज्ञाचक्षु भारतमार्त्तण्ड श्री गुट्टूलाल शास्त्री काशी आये। उन्होंने 'शतावधान' की अपनी क्रिया का अद्भुत प्रदर्शन किया। उसके पश्चात् गङ्गाधर शास्त्री से उनका शास्त्रार्थ हुआ और यह शास्त्रार्थ थोड़ी ही देर में पद्यमयी भाषा में होना आरम्भ हो गया। चकित श्री गुट्टूलालशास्त्री ने परीक्षार्थ समस्या दी।

समस्या और उसकी पूर्त्ति प्रारम्भ में ही दे दी गई है। सुनकर मुग्ध चकित शास्त्री गुट्टूलाल पं. गङ्गाधरशास्त्री के प्रति सश्रद्ध हो गये।

काशी नगरी की अपनी विशेषता है। दार्शनिक राजा अजातशत्रु के काल से अभी अभी पं. मदनमोहन मालवीय काल तक आध्यात्मिक और बौद्धिक जीवन की अविच्छिन्न और गौरवपूर्ण परम्परा चली आई है। आज भी जब इस अर्थप्रधान युग में विद्वान् अपनी प्राचीन पद्धति का त्याग कर 'अर्थकरत्व' की ओर बढ़ रहे हैं, यहां के विद्वान् एकमेव धौतवस्त्र धारण किये, अर्धनग्न सा कह उठता है—'**यस्यागमः केवलजीविकायैतं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति**।' अत्यन्त प्रख्यात होजाने पर अनेक स्थानों से यह प्रयत्न हुआ कि पं. गङ्गाधर शास्त्री को बुला लिया जावे। महामहोपाध्याय श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न जो उस समय कलकत्ता की राजकीय संस्कृत पाठशाला के अध्यक्ष थे, स्वयं काशी आये और शास्त्री जी से पांच सौ मासिक वेतन पर कलकत्ता कालेज में अध्यापन करने की प्रार्थना की। किन्तु विद्वान् चालीस रुपये मासिक वेतन पर काशी में रहे, किन्तु अर्धसाहस्र मुद्रा मासिक वेतन पर कलकत्ता नहीं गये। खिस्ते जी लिखते हैं:—

चत्वारिंशन्मुद्रिकामात्रवृत्तिः काले तस्मिन् शास्त्रिवर्यः कुटुम्बी।
काशीवासैकाग्रहस्त्यक्तवांस्तां वृत्तिं चान्यामर्धसाहस्रमुद्राम्॥

सन् १८८७ ई. में महारानी विक्टोरिया के रजतजयन्ती के अवसर पर सरकार ने आपको महामहोपाध्याय की पदवी से सम्मानित किया। तत्कालीन काशीनरेश श्री प्रभुनारायणसिंह महोदय ने पण्डितसभा में चीनांशुकपट्ट समर्पित किया। १९०३ ई. में सम्राट् सप्तम एडवर्ड के मुकुटधारणोत्सव के अवसर पर वायसराय ने शास्त्री जी को दिल्ली आने का निमन्त्रण किया किन्तु शारीरिक दुर्बलता के कारण शास्त्री जी वहां नहीं जा सके। इसलिये उस दिन कलेक्टर के संयोजकत्व में महोत्सव मनाया गया जिसमें शास्त्री जी को सी. आई. ई. की उपाधि से विभूषित किया गया।

शासकवर्ग की ओर से शास्त्री जी अनेक बार सम्मानित हुये किन्तु इससे आपके विचार स्वातन्त्र्य पर कोई प्रभाव न पड़ा। आप शासकवर्ग की आलोचना अपनी दृष्टि से करते ही थे। सन् १८९० ई. में काशी के अस्सीघाट पर राज्य की ओर से जलकल बनवाने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ। जिस स्थान पर जलकल बनने वाला

था उस स्थान पर गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रतिष्ठापित सीताराम का एक भव्य मन्दिर था। अधिकारियों का मत था कि उस स्थान से मूर्ति हटाकर अन्यत्र स्थापित की जावे। विरोध हुआ--जनता में गहरा असन्तोष फैला। अधिकारीवर्ग भी सजग हुये। अन्ततः जिला के अधिकारियों ने इस विषय पर समुचित विचार करने के लिये एक सभा की जिसमें शास्त्री जी ने इस विषय पर बड़ा जोरदार भाषा में देवमूर्त्तियों के स्थानान्तरण का विरोध किया। विरोध का असर पड़ा और अधि-कारीवर्ग झुक गये। राममन्दिर आज भी भदैनी (काशी) में खड़ा हुआ शास्त्री जी की निर्भीकता की घोषणा कर रहा है।

शास्त्री जी श्रौतविधान में बड़े निपुण थे। इतना ही नहीं कि आप कर्मकाण्ड में कुशल मात्र ही हों, इस विधान के प्रति आपकी पूर्ण निष्ठा थी। काशी के एक निर्धन ब्राह्मण पण्डित सदाशिव दीक्षित के मन में ज्योतिष्टोम यज्ञ करने की प्रबल उत्कण्ठा देख कर शास्त्री जी ने यज्ञभार को स्वयं उठाया और यज्ञ सम्पन्न कराया। इस यज्ञ में शास्त्री जी ने आर्थिक सहायता भी पूरी तौर से दी थी। १९५५ वि. सं. में नेपाल के राजपण्डित आचार्य शिरोमणि शर्मा के अनेक 'सोमयाग' 'अत्यग्निष्टोम' आदि यज्ञों का अनुष्ठान शास्त्रीय विधि से कराया। आपके यज्ञविधान की प्रशंसा आज भी वैदिकमण्डली में गायी जाती है। श्री बाल शास्त्री और गङ्गाधर शास्त्री को लुप्तप्राय श्रौतयज्ञों को पुनरुज्जीवित करने का श्रेय प्राप्त है।

वृद्धावस्था में शास्त्री जी को पुत्रशोक उठाना पड़ा। आपके ज्येष्ठपुत्र जिन्होंने प्राच्यविद्या के साथ साथ अङ्गरेजी के माध्यम से यूरोपीय संस्कृति-विषयों का भी अध्ययन किया था सहसा चल बसे। वृद्धशरीर इस वज्राघात से जर्जर हो उठा। शोक-सन्तप्त शास्त्री जी ने अध्यापन के कार्यभार से मुक्ति ली और तीर्थाटन के लिये अपनी पत्नी के साथ निकल पड़े। तीर्थयात्रा से लौट आने पर आप ने 'अलिविलास संलाप' नामक खण्डकाव्य की रचना की। इसमें सभी दर्शनों के मूलभूत सिद्धान्त पद्यबद्ध हैं। अपनी इस दार्शनिक विशेषता के कारण यह ग्रन्थ अभूतपूर्व है।

१९७० वैक्रम, ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपद गुरुवार को शास्त्री जी ने अपना पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग कर दिया:--

व्योमाश्वाङ्कशशाङ्कसम्मिततमे संवत्सरे वैक्रमे
ज्येष्ठे मासि दले सिते प्रतिपदि प्रातर्गुरौ वासरे।

अस्माकं रुदतां स्वयं भगवता स्नेहात्करालम्बिताः
श्रीगङ्गाधरशास्त्रिणो गुरुवरा जग्मुः परं शाश्वतम् ॥

आपके देहावसान के बाद ही आपके बड़े भाई महामहोपाध्याय पं. श्री राम शास्त्री भी शीघ्र ही संसार से विदा हो गये। गङ्गाधर शास्त्री के सुपुत्र श्रीभालचन्द्र शास्त्री भी सुयोग्य निकले और पिता के स्थान पर ही 'काशिकराजकीय संस्कृत पाठशाला' में नियुक्त हुये। उनके विषय में--

यैरद्यापि निजान्वयस्य महिमा संरक्षितः सादरं
छात्रौघोऽपि सहस्रशः प्रतिदिनं यैः पाठ्यते निर्भयम् ।
राकाचन्द्रसमानकीर्त्तिनिवहास्ते भालचन्द्राह्वया
नन्दन्तु प्रियपुत्रपौत्रसहिता नूनं समानाः शतम् ॥

शास्त्री जी की शिष्यपरम्परा भी गौरवशालिनी है। काशिकराजकीय संस्कृत पाठशाला के अध्यक्ष डा. थीबो और डा. वेनिस दोनों शास्त्री जी को अपना गुरु मानते थे। डा. वेनिस ने प्रयागविश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र पर भाषण देते समय अनेक बार 'प्रीयन्तां गुरवः' कहकर शास्त्री जी का स्मरण एवं सम्बोधन किया था।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के दिग्गज विद्वान् शास्त्री जी के शिष्य थे। महामहोपाध्याय पं. नित्यानन्द पन्त, म. म. पं. लक्ष्मणशास्त्री तैलङ्ग, गोस्वामी दामोदर लाल और म. म. पं. रामावतार शर्मा, पं. बालबोधमिश्र आदि ऐसे नाम हैं जो अपने साथ उस काल की संस्कृत विद्वत्ता का इतिहास रखते हैं। ये सब शास्त्री जी के शिष्य थे। म. म. पं. नित्यानन्द पन्त व्याकरण के धुरन्धर विद्वान् हुये। गोस्वामी दामोदरलाल अपने समय में साहित्य के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् के रूप से प्रतिष्ठित थे। कौन नहीं जानता उस विलक्षण प्रतिभा को जो म. म. पं. रामावतार शर्मा में थी? म. म. हरिहरकृपालु द्विवेदी के शब्दों में अजातशत्रु पं. बालबोध मिश्र ज्योतिष को छोड़ संस्कृत के सारी शाखाओं पर आपका समान रूप से अधिकार था।

इनके अतिरिक्त नेपाल के राजगुरु हेमराज शर्मा उपाध्याय भी आपके शिष्य थे। काशीनरेश प्रभुनारायण सिंह जी को भी यही गौरव प्राप्त था।

आपकी रचनायें:—

१. राजारामशास्त्रिजीवनवृत्तः--अपने गुरु राजाराम शास्त्री का जीवनवृत्त

गद्यपद्यात्मक भाषा में आपने वर्णित किया है। यह 'विद्यासुधानिधि पत्रिका' में क्रमशः निकल चुका है।

२. शाश्वत धर्मदीपिका :—१८७७ ई० में महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारोहण के अवसर पर रायबहादुर प्रमदादास मित्र के संयोजकत्व में बुलाई गई सभा ने शास्त्री जी से निवेदन किया था कि प्राचीन परम्परा और अर्वाचीन समस्याओं को ध्यान में रख कोई धर्मग्रन्थ की रचना करें। फलस्वरूप 'शाश्वतधर्मदीपिका' का निर्माण हुआ।

३. बालशास्त्रिजीवनचरित :—१९३९ वैक्रम में उपर्युक्त प्रथम ग्रन्थ के समान गद्यपद्यमयी भाषा में बालशास्त्री रानाडे की जीवनचरित प्रकाशित कराया।

इनके अतिरिक्त पदमञ्जरी, रसगंगाधर, वाक्यपदीय, तन्त्रवार्त्तिक, सिद्धान्तलेश, न्यायमञ्जरी तथा न्यायभाष्य आदि ग्रन्थों को टिप्पणियों से विभूषित किया।

'अलिविलाससंलाप' और 'हंसाष्टक' ये दो ग्रन्थ अपने ढंग के अनूठे हैं। 'अलिविलाससंलाप' की चर्चा ऊपर आ चुकी है। 'हंसाष्टक' भी दार्शनिक ग्रन्थ है।

प्रश्न

१. महामहोपाध्याय पं० गङ्गाधर शास्त्री का संक्षेप में जीवनचरित लिखिये।
२. महामहोपाध्याय पं० गङ्गाधर शास्त्री की विद्वत्ता तथा उनकी रचनाओं पर एक निबन्ध लिखिये।



महामहोपाध्याय पं० जयदेव मिश्र

[जन्म वि० सं० १९११, निधन १९८२]

जयः कुले जयोऽभ्यासे जयः पण्डितमण्डले।
जयो मृत्यौ जयो मोक्षे जयदेवः सदा जयः॥

(डा० गङ्गानाथ झा)

संस्कृत पण्डितों की विशेषता थी—शास्त्रार्थ। अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष में शास्त्रार्थ की परम्परा है। वैदिक युग में 'विदथ' और 'समिति' औपनिषद् काल में परिषद् और मध्यकाल में राजसभायें एवं पण्डितमण्डल इन शास्त्रार्थों से गुञ्जित रहते थे। मुगलकाल में संस्कृत को राज्याश्रय प्रायः नहीं मिला और इसलिये संस्कृत पाण्डित्य की अन्तःसलिला उस काल में प्रायः अलक्षित रूप से बहती रही। थोड़े से संस्कृत के परिपोषक राजवंश थे जिनके कारण वह यदा कदा दिखाई देती थी। उन्नीसवीं शताब्दी भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान काल है। इस समय संस्कृत भाषा, साहित्य धर्म एवं संस्कृति के प्रति प्रेम बढ़ा और प्राचीन परम्परायें पुनरुज्जीवित हुईं। हमारे चरित्रनायक इस काल के ही रत्न थे और शास्त्रार्थ में सर्वदा जयशील रहकर अपने नाम को सार्थक किया था।

मिश्र जी का जन्म परम पवित्र मिथिला की गोद में स्थित गजहड़ा नामक गांव में १९११ विक्रम संवत् में हुआ। जिस सोदरपुर मैथिल ब्राह्मणकुल में आप का जन्म हुआ वह कुल सदा से मिथिला प्रान्त में प्रतिष्ठित है।

चूड़ाकरण उपनयन आदि संस्कार के अनन्तर आप सर्वप्रथम व्याकरण पढ़ने के लिये हरिनगर ग्राम निवासी पण्डित प्रवर हल्ली झा के यहां पहुंचे। दो वर्षों तक उनकी छत्रच्छाया में रहकर आपने व्याकरण शास्त्र के प्रारम्भिक ग्रन्थों का यथावत् अध्ययन किया किन्तु आर्थिक संकट उपस्थित हो जाने के कारण उस स्थान को छोड़कर गन्धवारि गाँव में महामहोपाध्याय पण्डित रज्जे मिश्र से आपने व्याकरण शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ शब्देन्दुशेखर आदि का अध्ययन किया। उनके शिष्यत्व काल में ही पण्डितमण्डली में आप की प्रतिष्ठा पूर्णरूपेण हो चली थी।

इसके अनन्तर मिश्रजी प्राचीन परम्परा के अनुसार व्याकरणशास्त्र के

मौखिक ग्रन्थों का अध्ययन समाप्त कर व्याकरण आदि शास्त्रों में विशिष्ट विद्वत्ता प्राप्त करने के लिये काशी चले गये। वहां जाकर आपने सर्वप्रथम महामहोपाध्याय पण्डित श्री शिवकुमार शास्त्रीजी को अपना गुरु बनाया। मिश्रजी शास्त्रीजी के सम्पर्क में रहकर थोड़े ही समय में विविध शास्त्रों के उद्भट विद्वान् हो गये। बहुत कम अवस्था में ही काशी के गण्यमान्य विद्वानों में आपकी गणना होने लगी। अध्ययनकाल के समाप्त होने के थोड़े ही दिन बाद आपके गुणों से प्रभावित होकर तत्कालीन दरभंगाधीश्वर महाराजाधिराज श्रीमान् लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर ने आप को काशीस्थ दरभंगा पाठशाला में अध्यापन के लिये नियुक्त किया। उस समय दरभंगा पाठशाला में महामहोपाध्याय पण्डित श्री शिवकुमार शास्त्री, महामहोपाध्याय पण्डित श्री तात्याशास्त्री तथा महामहोपाध्याय पण्डित श्री सुधाकर द्विवेदी आदि संस्कृत वाङ्मय के उद्भट विद्वान् अध्यापन कर रहे थे। आप १९७४ विक्रम संवत् तक इस पाठशाला में अध्यापक रहे। आपकी अध्यापनशैली इतनी अच्छी थी, आपका पाण्डित्य इतना उत्कृष्ट था कि जिससे आकृष्ट होकर थोड़े ही समय में हजारों छात्र आपके शिष्य हो गये।

मिश्रजी जिस समय दरभंगा पाठशाला में अध्यापक थे उसी समय से महामना मालवीयजी का बड़ा आग्रह था कि आप हिन्दूविश्वविद्यालय में अध्यापक होना स्वीकार करें। माननीय मालवीय जी के आग्रह पर आप ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्याविभाग में प्रधानाध्यापक के पद को सुशोभित किया। विश्वविद्यालय की शोभा भी तो आप ही जैसे विद्वानों से ही हो सकती थी क्योंकि आप भी तो एक विश्वविद्यालय ही थे। इस पद पर बहुत वर्षों तक आसीन रहकर आपने अपनी विद्वता के बल पर विपुल कीर्ति प्राप्त की। आपने शताधिक शिष्यों को प्रकाण्ड पण्डित बनाया। आपके शिष्य देश के कोने कोने में व्याप्त हैं। अध्यापन कार्य में तो आपको पूर्ण यश था ही साथ ही साथ शास्त्रार्थ में भी आपकी गणना ख्यातनामा विद्वानों में की जाती थी। आपको लोग शास्त्रार्थ की मूर्ति कहा करते थे। अपने समय के शास्त्रविचारकों में आपको अखण्ड यश प्राप्त हुआ। शास्त्रार्थ में महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार मिश्र के बाद अपने युग के शास्त्रार्थी पण्डितों में आपका नाम सर्वप्रथम लिया जाता था।

इस प्रकार जब आपकी ख्याति भारत सरकार के अधिकारियों के कानों तक

पहुंची तो भारत सरकार के प्रतिनिधि वायसराय ने १९१९ ई० में आपको महामहोपाध्याय की पदवी देकर आपकी पूर्ण प्रतिष्ठा बढ़ायी।

आप धार्मिक कृत्यों के प्रति पूर्णरूप से सजग थे। आप अपने जीवन के ४६ वर्षों तक नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर प्रातःकालीन कृत्य समाप्त कर गंगाजी के मणिकर्णिका घाट पर जाकर गंगा स्नान कर विश्वनाथ एवं अन्नपूर्णा पूजन किया करते थे। प्रतिदिन सहस्र गायत्री का जप करना भी आपके जीवन का एक प्रधान अंग था। इसके अनन्तर ठीक समय पर अध्यापनार्थ विद्यालय जाते थे। ग्यारह बजे तक अध्यापन कर घर आने पर पुनः स्नान आदि कृत्य करने के बाद षडङ्ग-शतरुद्री स्नपनपूर्वक नर्मदेश्वर और शालग्राम की पूजाकर मध्याह्नोत्तर भोजन किया करते थे। उसके बाद कुछ विश्राम कर पुनः घर पर आए हुए छात्रों को सायङ्काल पर्यन्त पढ़ाते थे। तत्पश्चात् सायंकृत्य समाप्त कर गुरु के समीप जाकर उनके साथ शास्त्रीय चर्चा करने के बाद घर आते और विशेष रूप से शास्त्रीय जिज्ञासा रखने वाले छात्रों को ग्यारह बजे रात तक पढ़ाते थे। उसके बाद भोजन कर विश्राम करते थे। इस प्रकार आपके दैनिक कार्यों के ऊपर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि आपका सारा समय विद्या के अध्ययन, अध्यापन एवं देवाराधन में ही लगता था।

इस प्रकार अध्ययन, अध्यापन आदि विविध उल्लेखनीय कार्यों में अखण्ड-कीर्ति प्राप्त कर महामहोपाध्याय जी १९८२ विक्रम संवत् फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को भगवती भागीरथी गंगा के मणिकर्णिका घाट पर अपना भौतिक शरीर का परित्याग कर परमात्मतत्व में मिल गये।

मिश्र जी का शास्त्रों के प्रति इतना असीम प्रेम था कि देहावसान के दो चार दिन पहले जब वे ज्वर से आक्रान्त थे उस अवस्था में भी शास्त्रीय वाक्यों का ही उच्चारण किया करते थे। शास्त्रप्रेमी होने के साथ साथ आप बड़े धीर, गम्भीर एवं उदार व्यक्ति थे किसी भी विशेष परिस्थिति में आप अपने पंथ से विचलित नहीं होते थे। आप ही जैसे व्यक्ति को लक्ष्यकर शास्त्रों में कहा गया है:—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः सदा विशतु गच्छतु वा यथेच्छम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

एक समय की बात है कि महामना मालवीय जी ने विद्वानों की एक सभा बुलायी। जिसमें विचारणीय विषया था 'अस्पृश्यतानिवारण' का समर्थन होना चाहिए अथवा नहीं।

मालवीय जी का अभिप्राय था कि यदि मिश्र जी इस सभा में अस्पृश्यता निवारण का समर्थन कर दें तो विश्वविद्यालय को इस समय तीन लाख रुपये मिल जायँ। सभा में उपस्थित लोग घबड़ा गये कि कहीं मालवीय जी के अनुरोध पर मिश्र जी उक्त विषय का समर्थन न कर दें। किन्तु ऐसी बात कब होने वाली थी। मिश्र जी ने महामना जी के अनुरोध पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। एकाएक सभा में उठ खड़े हुए और बड़ी निर्भीकता के साथ उन्होंने महामनाजी के अनुरोध का खण्डन कर दिया। परिणाम स्वरूप विश्वविद्यालय को तीन लाख रुपये नहीं मिल सके। सभा में उपस्थित विद्वद्गण शंका करने लगे कि कहीं मिश्र जी को इसके कुछ विपरीत परिणाम का अनुभव नहीं करना पड़े। दूसरा व्यक्ति होता तो शायद कुछ करता भी किन्तु महामना जी तो निर्विकार गुणग्राही एवं सदसद्विवेकी पुरुष थे। उन्हें इस बात पर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने इस बात के ऊपर पूर्ण गौरव का अनुभव किया कि हमारे विश्वविद्यालय में ऐसे भी निर्भीक एवं यथार्थवादी विद्वान् हैं जो समय पर मेरे जैसे व्यक्ति के अनुरोध पर भी ध्यान नहीं दे सकते हैं। वे बड़े धीर थे अतः निर्विकार भी। तभी तो कवि कालिदास ने कहा है **'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः'**। **'सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता'** ये बातें इनमें पूर्णरूप से चरितार्थ होती थीं। आप सारे गुणों के एकमात्र केन्द्र थे तभी तो आपकी इतनी प्रतिष्ठा हुई।

लोकोपकार :—

विद्याप्रचार एवं ग्रन्थ रचना के द्वारा तो आपने समाज का उपकार किया ही साथ ही साथ आपने अपने ग्राम गजहड़ा की जनता के उपकार के लिये एक जलाशय भी खुदवाया। १८४६ शाके में इस तडाग का याग भी सम्पन्न हुआ।

इस याग में कर्मकाण्डोद्धारक महामहोपाध्याय पण्डित परमेश्वर झा ने पौरोहित्य कार्य किया था। महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा भी उस अवसर पर

उपस्थित थे । इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय जी के गुरुजी महामहोपाध्याय श्री रजे मिश्र ने आपकी प्रशंसा में अनेक श्लोकों[1] की रचना की थी ।

शिष्यपरिचय :—

यद्यपि आपके बहुत शिष्य हुए किन्तु यहाँ सबका संक्षेप रूप में भी परिचय देना संभव नहीं तथापि कुछ विद्वानों का परिचय दिया जा रहा है ।

१—महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा—आपके सम्बन्धमें कहना ही क्या है । इसी पुस्तक में आपकी जीवनी स्वतन्त्ररूप से लिखी गयी है ।

२—पण्डितराज राजनारायण शास्त्री—आप काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में व्याकरणशास्त्र के प्रधानाध्यापक हैं । आप मिश्रजी के बड़े भक्त शिष्य हैं । शास्त्रार्थ विचार में आप अपनी निजी विशेषता रखते हैं ।

३—पण्डित मार्कण्डेय मिश्र—आप प्रसिद्ध दार्शनिक एवं वैयाकरण थे । आप उदयपुर महाराणा संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य थे । आप जिस समय काशी में पढ़ते थे उस समय काशी की विद्वन्मण्डली में आपके साथ शास्त्रार्थ करने वालों की संख्या इनी-गिनी थी ।

४—पण्डित दामोदर मिश्र—आपकी मिथिला की पण्डितमण्डली में पूर्ण प्रतिष्ठा है । आप व्याकरण एवं धर्मशास्त्र के तो प्रकाण्ड पण्डित हैं ही साथ ही साथ न्याय, वेदान्त आदि दर्शन शास्त्रों में भी आपकी पूर्ण प्रतिपत्ति है । मिथिला प्रान्त के सुप्रसिद्ध सनातन धर्मियों में आपका प्रथम स्थान आता है । आप सीता-मढ़ी श्री जानकी संस्कृत विद्यालय में २४ वर्षों तक अध्यापन कार्य कर इस समय घर पर ही अपने परिवार के साथ शान्तिमय जीवन॰ यतीत कर रहे हैं ।

विद्यावंश के अतिरिक्त आपका निजी परिवार भी विद्वानों से भरा हुआ है । आपके छोटे भाई पण्डित मधुसूदन मिश्र एक सुप्रतिष्ठित पण्डित थे । आपके पुत्र महामहोपाध्याय पण्डित उमेशमिश्र जी पूर्ण प्रतिष्टित विद्वान् हैं । आप इस समय नवस्थापित मिथिला विद्यापीठ दरभंगा के संचालक हैं ।

---

१. श्लोकरचना म० म० डाक्टर उमेशमिश्र लिखित परिभाषेन्दुशेखर की विजया टीका की भूमिका में देखिए ।

आपकी रचनायें:—

१. परिभाषेन्दु शेखर की टीका विजया।

२. शास्त्रार्थ रत्नावली—इस ग्रन्थ के द्वारा आपने शास्त्रार्थ विचार में भाग लेने वाले विद्वानों का बड़ा उपकार किया।

३. व्युत्पत्तिवाद की टीका–जया। ४. महाविनायकस्थापनपद्धति। ५. वास्तुपद्धति। ६. शतचण्डीपद्धति। ७. कुलदेवतास्थापनपद्धति। ८. नीलवृषोत्सर्गपद्धति। ९. तुलादानपद्धति।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी अनेकानेक ग्रन्थों के निर्माण में आप लगे हुए थे किन्तु इसी बीच आप इस संसार से बिदा हो चले। अतः वे कार्य सब पूर्ण नहीं हो सके।

अन्त में मैं महामहोपाध्याय पण्डित श्रीनारायणशास्त्री द्वारा रचित निम्नलिखित पद्य द्वारा अपने इस लेख का उपसंहार करता हूँ।

'नानाग्रन्थविधानजेन यशसा व्याप्याखिलं भारत–
मध्याप्य प्रचुरं विधाय बहुलान् विद्यार्थिनः पण्डितान्।
विद्वत्संसदि गीष्पतिप्रतिमतां सम्पाद्य लोकोत्तरां
सायुज्यं जयदेवमिश्र विबुधा विश्वेश्वरेणाप्नुवन्॥

प्रश्न

१ म० म० पं० जयदेव मिश्र के पाण्डित्य पर टिप्पणी लिखिये।

२ म० म० पं० जयदेव मिश्र का संक्षेप में जीवन चरित लिखिये।



म० म० पं० परमेश्वर झा वैयाकरणकेसरी

[जन्म वि० सं० १६१३, निधन १६८१]

काव्यं विना व्याकरणं न राजते न काव्यमव्याकरणं विराजते ।
काव्येन च व्याकरणेन भारतो परिष्कृता ते श्रयते सभारतीः ॥

लौकिक संस्कृत के प्रथम वैयाकरण पाणिनि का व्यक्तित्व कितना विचित्र है ? आपने संस्कृत-व्याकरण को ऐसा वैज्ञानिक मूलाधार दिया कि आज सहस्रों वर्षों के उपरान्त भी 'शब्दशास्त्र' का भवन अपनी उसी नींव पर सुदृढ़ स्थिति में खड़ा है । परम्परा है कि वैयाकरण पाणिनि में केवल तर्ककर्कश कारयित्री प्रतिभा ही नहीं थी अपितु रसनिर्भर भवियित्री प्रतिभा भी विकसित रूप में थी । राजशेखर का कथन है **'आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम् ।'** व्याकरण से वाणी को विमल कर 'काव्य' से चित्त चमत्कार की ओर प्रवृत्त हुये । महामहोपाध्याय पं० परमेश्वर झा में भी ऐसी प्रवृत्ति परिलक्षित हुई । आपने पहले व्याकरण पढ़ा, समझा और लिखा तत्पश्चात् काव्यसर्जन की ओर बढ़े । इसलिये कहा जा सकता है :—

'आदौ व्याकरणं काव्यमनु यक्षसमागमम् ।'

इतना ही नहीं, आपमें इसके अतिरिक्त भी अन्य क्षेत्रों की ओर झुकाव था। पहले ही हमलोग देख चुके हैं कि मिथिला में न्याय और धर्मशास्त्र की परम्परा बहुत बाद तक चली । अतएव महामहोपाध्याय जी ने धर्मशास्त्र के व्याख्यात्मक ग्रन्थ भी लिखे ।

पं० परमेश्वर झा का जन्म दरभंगा जिले के तरौनी नामक ग्राम में १९१३ वैक्रम पौषशुक्ल प्रतिपदा का हुआ था । इनके पिता का नाम पं० पूर्णनाथ झा था । घर में व्याकरण के अध्ययन की परम्परा प्राचीन काल से थी । पं० पूर्णनाथ झा स्वयं व्याकरण के अच्छे पण्डित थे; पितामह वैयाकरण-पण्डित भोलानाथ झा महाराज छत्रसिंह के सभापण्डित थे ।

श्री झा का अक्षरारम्भ संस्कार 'कुलाचार' के अनुसार पाँच वर्ष में ही कर दिया गया था । व्याकरण का प्राथमिक शिक्षण पं० चिरञ्जीव मिश्र द्वारा हुआ । विद्यार्थी जीवन के उषाकाल से ही आपके प्रखर प्रकाश का अनुमान होता था ।

उस समय ही आप अपनी कुशाग्र बुद्धि से अनेकों के ध्यान आकृष्ट कर सके थे। उस समय आपकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी अतएव आपकी प्रतिभा दारिद्र्य भार से दलित न हो जावे इसलिये आपकी छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी हो गयी थी। आपके शिक्षक अपने 'होनहार विरवा के चीकने पात' देखकर परम प्रसन्न थे और झा अपने शिक्षक की प्रीति का अनुभव कर प्रफुल्लित थे। शीघ्र ही आपने व्याकरण और काव्य का अध्ययन समाप्त कर लिया।

पण्डितों का काशी के प्रति बहुत आकर्षण और अनुराग है। प्रारम्भ से ही यहाँ भागीरथी गङ्गा के साथ साथ ज्ञानगङ्गा प्रवाहित होती रही है। अत्यन्त प्राचीन युग में और फिर पूर्वमध्यकाल से उत्तरापथ के विद्वान् इसकी धारा में स्नात होकर भारती की उपासना करते रहे हैं। पं० झा भी अपना पाथेय बाँध ज्ञानगङ्गा के तट की ओर प्रस्थित हो गये।

उस समय यहाँ काशिकराजकीय संस्कृत पाठशाला में पं० राजारामशास्त्री और पं० बालशास्त्री के समान विद्वान् अध्यापन कर रहे थे। इन्हीं विद्वानों के चरणों में बैठकर श्री झा ने धर्मशास्त्र, मीमांसा, सांख्य, वेदान्त और व्याकरण का अध्ययन किया। पं० ताराचरण भट्टाचार्य न्याय की विद्वत्ता के लिये बहुत ख्यात हो गये हैं। उनसे तथा पं० विश्वनाथ झा से आपने 'अनुमानखण्ड' का अध्ययन किया।

काशिकराजकीय संस्कृतपाटशाला की परीक्षा में सर्वोच्च पद प्राप्त करने के कारण आप तत्कालीन वाइसराय लार्डबुक द्वारा सम्मानित हुये। संस्कृत विद्या का प्रेमी, प्रख्यात विद्वान् डा० बूलर भी आपकी संस्कृत भाषण की पटुता देखकर चमत्कृत हो गया था। उसने भी आपका समादर किया था। यह स्मरणीय है कि इस समय पं० झा की अवस्था केवल उन्नीस वर्ष की थी।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् अध्यापन प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम आप राजस्थान में झालरापाटन राज्य के संस्कृत-शिक्षण के अध्यक्ष हुये। आप से वहां की विद्वन्मण्डली और अधिकारीवर्ग समरूप से सन्तुष्ट थे। चार वर्ष तक आपने वहां कार्यभार सम्हाला और सन् १८८० में उस पद का स्वेच्छया परित्याग कर तत्कालीन बनैलीराज्याधिपति राजा पद्मानन्द सिंह बहादुर के दरबार में राज्यपण्डितपद को स्वीकार किया। बनैली राज्य की जलवायु आपके अनुकूल नहीं पड़ी इसलिये आपने उस स्थान को भी शीघ्र ही छोड़ दिया।

अध्यापन के क्षेत्र में वे ही सफलता प्राप्त कर पाते हैं जो पहले तो अपने विषय के पूर्ण विद्वान् और दूसरे अपनी 'विद्वत्ता' को शिष्य में संक्रान्त कर सकें। कालिदास का कथन है:—

शिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषरूपा।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥

बिना ज्ञान का भाषण सारहीन वाग्जाल है और अभिव्यञ्जनकला के अभाव में ज्ञाननिधि 'अन्तर्गुडगुडायते' की स्थिति में रहती है। पण्डित को अध्यापक होने के लिये विदुर के शब्दों में **'चित्रकथः ऊहवान् प्रतिभानवान् आशुग्रन्थस्य वक्ता'** होना आवश्यक है। श्री झा में ये सारी योग्यतायें थीं और इसलिये ये बहुत कुशल अध्यापक हो सके।

बनैली राज्य छोड़ने के बाद आप गन्धवारि ड्योढ़ी की महारानी चन्द्रावती द्वारा संस्थापित संस्कृत पाठशाला के प्रधान अध्यापक हुये। यहां आप बारह वर्ष तक रहे। इन दिनों आपकी ख्याति बढ़ी और पण्डितप्रेमी महाराजाधिराज श्री रमेश्वरसिंह बहादुर ने आपको अपनी दरभङ्गा राजसभा का प्रधान पण्डित बनाया। कुछ समय के लिये आप काशिक राजकीय संस्कृत विद्यालय के अध्यापक भी रहे किन्तु दरभङ्गा-नरेश के अनुरोध ने फिर आपको दरभङ्गा ही बुला लिया। दरभङ्गा में आप पच्चीस वर्ष तक रहे। महामहोपाध्याय पं० चित्रधर मिश्र, जिनके विषय में हमलोग पहले ही अध्ययन कर चुके हैं जब स्वर्गगत हो गये तब पं० झा श्रीमती रमेश्वरलता विद्यालय के प्रधानाचार्य नियुक्त हुये।

वह समय था जब संस्कृत साहित्य की विभिन्न शाखाओं की ओर पहले यूरोपीय विद्वानों और इसलिये फिर भारतीयों का ध्यान पड़ा। यूरोपीय विद्वान् उत्सुक हुये और भारतीय गौरवान्वित। अनेक संस्थायें खुलीं जो संस्कृत विद्वानों का समादर किया करती थीं। 'भारतधर्ममहामण्डल' ने पं० झा को 'वैयाकरण-केसरी' बनाया तो बिहारपण्डितसभा ने 'विद्यानिधि'। सन् १९१४ ई० में भारत सरकार ने 'महामहोपाध्याय' की उपधि से सत्कृत किया।

संस्कृत-शिक्षा-परीक्षा सम्बन्धी कार्यों में आप सदा अभिरुचि रखते थे। बिहार की 'संस्कृत काउंसिल' और 'संस्कृत कन्वोकेशन' (आजकल 'संस्कृत-परिषत्') के आप सदस्य थे। पटना विश्वविद्यालय की स्थापना के समय उसमें

संस्कृत-शिक्षा के प्रबन्ध करने के लिये जो समिति बनी थी उसके भी आप सदस्य थे। मुजफ्फरपुर धर्मसमाज संस्कृत कॉलेज के प्रबन्धक समिति में भी आप थे। १९२० में फिर भारत सरकार ने तत्कालीन पद्धति के अनुसार रेशमी धोती एवं चपकन देकर आपको सम्मानित किया।

कालिदास का मेघदूत संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्यों में से है। अभिशप्त यक्ष रामगिरि से अपनी प्रिया को मेघ के द्वारा संदेश भेजता है। यक्ष की मानसिक व्यथा तथा अपनी प्रिया के प्रति रति का वर्णन चित्तापहारक है। किन्तु यक्ष जब शाप से मुक्त हुआ होगा, और अलकापुरी में हर के शिर पर स्थित चन्द्रिका से धौत अपने हर्म्य में पहुंच कर विरहविधुरा प्रिया से मिला होगा तब की कल्पना मनोहारिणी है। यदि यह विरह सावन भादों की रातों के समान आई है तो वह मिलन भी शरत् की चांदनी के समान सरस होगा। पं० झा जी ने इसी वस्तु का निबन्धन अपने यक्ष-समागम में किया है। एक श्लोक देखिये:—

निश्वासस्याप्यधिकस्वरतां योऽधरस्तेन सेहे-
धीरो दध्यात् कथमिव तुलां पल्लवस्तस्य बालः।
बिम्बं निम्बोपममथ रसे का सुधापातपीता
कान्ते स्वान्ते बहुकलयता तुल्यता क्वापि नापि॥

'कान्ते! तुम्हारे जिस अधर ने सांस की भी गर्मी न सही उससे इन चञ्चल बालपल्लवों की बराबरी कैसी? निम्ब की तरह कड़वे बिम्बफल हैं और अमृत तो अनेकों के द्वारा पिया गया है। इसलिये तेरे अधर की तुलना कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकती।

'मेघदूत' का उपसंहार यदि 'यक्ष समागम' है तो 'ऋतु संहार' का उपसंहार 'ऋतुवर्णन' है। इस ऋतुवर्णन में सरसता के साथ-साथ यथार्थचित्रण की ओर भी ध्यान है। 'होलिकोत्सव' का वर्णन देखिये। यहां वसन्त का वनश्री के साथ होली खेलने का चारुचित्र खींचा है:—

नवकिसलयरम्भाक्षिप्त सिन्दूरमुष्टिः
प्रतिवनततिलक्ष्म्याऽऽक्रीड्य होल्युद्भवेऽसौ।
कमलदलमिषेणोत्कीर्य सा वीरमभ्रं
सरसि कविसहायः स्नाति किंस्विद्वसन्तः॥

गद्य काव्य में भी आपका नैपुण्य था। पुरानी कहावत है–'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।' इस निकष पर भी आपकी सुवर्ण–प्रतिभा खरी उतरी। गद्यकाव्य की शैली पर ध्यान दीजिये:—

वाद्यन्ते चाव्यक्तमधुराणि पदानि बालका इवाङ्कका: कोमलाङ्गा: मृदङ्गा:, आलाप्यते चालिङ्गय नवोढा कृशाङ्गी तन्त्री, शयनीयशयनेशयेन सारङ्गी सयोज्यन्ते वयस्या इव तुल्यकाला: कांस्यताला परामृश्यते च शनकै: कामिनीव मानिनी क्रोडीकृता कराङ्गुलिभि: सगुणवीणा।

गद्य–पद्य में समानरूप से चमत्कारिणी रचनाओं से मुग्ध होकर विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा ने आपके विषय में कहा था:—

अमृतं मृतकेन लभ्यते मधुनोऽप्येकरसदूषणम्।
अधरं मधुरन्न कर्णयोरतुलन्ते रचनं विभावये॥

पं० झा जी की सूक्तियाँ भी विचारोत्तेजक और हृदयहारिणी हैं। निम्न सूक्तियां पर ध्यान दीजिये:—

(१) स्वस्याचाराद् भजति हि जनो गर्हणामर्हणां वा।
(२) मध्यस्थानां लघु समुचितं सन्धिकृत्यं हि तत्र।
(३) अल्पादल्पो भवति विषम: कल्पकल्पो हि काल:।
(४) संकल्पाप्त: शमयसमयो ह्रस्यते द्राघितोऽपि।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री काशीप्रसाद जायसवाल के आप मित्रों में से हैं और मिथिला के इतिहास के विषय में आप से उनका प्राय: परामर्श हुआ करता था। रायबहादुर श्यामनारायण सिंह ने 'तिरहुत का इतिहास' लिखने में आपसे अमूल्य सहायता प्राप्त की।

आप इतिहास में बहुत रुचि रखते थे। इतना ही नहीं आपने 'मिथिलातत्त्व-विमर्श' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया जो मिथिला का राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक इतिहास लिखने का सर्वप्रथम प्रयत्न होते हुये भी आज विद्वान् लेखकों का [illegible]

आपकी रचनायें—

१. संस्कारदशकर्मपद्धति टीका।
२. छन्दोगवृषोत्सर्ग।
३. श्राद्धरत्नटिप्पण।
४. आह्निकपद्धति सटीक।
५. सदाचार दर्पण।
६. नक्षत्रनिर्णय।
७. तडागयागपद्धति।
८. परमेश्वर कोष।
९. महिषासुरवधनाटक।
१०. मिथिलेशप्रशस्ति।
११. मिथिलातत्त्वविमर्श।
१२. ऋतुवर्णन।
१३. यक्षसमागम।

ऊपर कुछ थोड़े ही ग्रन्थों के नाम दिये गये हैं। आपके सारे ग्रन्थों की संख्या तीस से अधिक होगी।

शिष्यपरम्परा:—

१. पं० मार्कण्डेय मिश्र।
२. पं० त्रिलोकनाथ मिश्र–दरभङ्गाराजकीय संस्कृत विद्यालय में प्रधानाध्यापक।
३. शिवनन्दन ठाकुर एम. ए. व्याकरणतीर्थ इत्यादि।

प्रश्न

१ महामहोपाध्याय की ग्रन्थरचना पर एक टिप्पणी लिखिये।
२ महामहोपाध्याय के जीवनचरित संक्षेप में लिखिये।



सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पण्डित बच्चा झा

[जन्म वि० सं० १९१७, निधन १९७८]

मिथिला में न्याय की जो धारा ईसा पश्चात् नवम शताब्दी में प्रवाहित हुई वह किसी न किसी रूप में अभी तक बहती चली आरही है। मिथिला में इस शताब्दी के प्रतिनिधि हैं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पं० धर्मदत्त झा जो बचा झा के नाम से विख्यात हुये।

बचा झा मिथिला के गोद में स्थित दरभंगा जिले के 'नवानी' नामक गाँव में १९१७ वैक्रम में चैत्र शुक्ल नवमी को उत्पन्न हुये थे। आप के पितामह का नाम पं० रत्नपाणि झा था। पं० रत्नपाणि दरभंगाधीश्वर श्रीमान् रुद्रसिंह महाराज के राजपण्डित थे। आप आचरण की शुद्धि तथा स्मार्त्त साहित्य के पाण्डित्य के कारण दरभंगा में 'महर्षि' की कोटि में परिगणित होते थे। आपने कुछ स्मार्त्त निबन्धों की रचना भी की थी। पं० रत्नपाणि के एक ही पुत्ररत्न उत्पन्न हुये— पं० दुर्गादत्त झा, जो हमारे चरित नायक के पिता थे। इनका नाम 'धर्मदत्त' रखा गया किन्तु माता-पिता के दुलार ने इनको बचपन में जो 'बच्चा' की आख्या दी वह बाद में सर्वत्र प्रचलित हो गई।

पं० बच्चा झा का प्रारम्भिक अध्ययन अपने घर पर ही हुआ। कालान्तर में आप 'ठाढ़ी' ग्राम के निवासी विद्वन्मूर्धन्य पं० विश्वनाथ झा से पढ़ने गये। पं० विश्वनाथ झा एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे। बच्चा झा की महानता का सूत्रपात यहीं हुआ। पं० विश्वनाथ झा, बनैली, नरहन आदि राजधानियों में प्रायः बुलाये जाते थे और इसलिये अध्यापन-कार्य के लिये यथेष्ट समय आपको नहीं मिल पाता था। अतः अन्यत्र जाने की इच्छा न रहने पर भी बाध्य होकर पं० बच्चा झा को पढ़ने के लिये दूसरी जगह जाना पड़ा। उस काल में नैयायिक प्रवर पं० बबुजन झा की प्रसिद्धि दर्शन शास्त्र के अध्यापन में थी अतएव आपने न्यायदर्शन पं० बबुजन झा से पढ़ा। इसके बाद आपने मीमांसा, वेदान्त इत्यादि अन्य दर्शन शास्त्रों का अध्ययन काशी में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के चरणों के समीप बैठकर किया।

इस प्रकार अध्ययन समाप्त कर जब आप घर लौटे तो आपने मिथिला की प्राचीन परम्परा के अनुसार घर पर ही एक पाठशाला स्थापित कर छात्रों को

पढ़ाना प्रारम्भ किया। आपकी विद्वत्ता एवं अध्यापन-कुशलता की प्रशंसा सुनकर अपने प्रान्त को कौन कहे, भारत के कोने कोने से छात्रगण बहुत अधिक संख्या में आकर पढ़ने लगे। कालिदास ने अध्यापन का मापदण्ड जो स्थिर किया है उससे आप पूर्णरूप से सफल हुये। महाकवि के अनुसार वही अध्यापक सफल हो सकता है जो प्रथमतः पाण्डित्य का आगार हो और उसके साथ ही उसमें विद्या-संक्रान्त करने की कला हो। ये दोनों बातें पं० बच्चा झा में विलक्षण रूप में थी। इसलिये इनकी ख्याति शीघ्र ही सर्वत्र फैल गई। यहाँ तक कि द्वारिकापीठाधीश्वर शङ्कराचार्य ने स्वयं आप से अध्ययन करने के लिये सादर आपको बुलाया और शिक्षाग्रहण की। इस प्रकार पं० बच्चा झा को शङ्कराचार्य के शिक्षक बनने का अद्वितीय श्रेय उपलब्ध हुआ। सूरत में आयोजित अखिलभारतीय पण्डितसभा में आप ही प्रधान बनाये गये थे।

वृत्यर्थ अध्यापन करना आप की प्रवृत्ति के प्रतिकूल था किन्तु दरभंगाधिराज श्रीमान् रमेश्वरसिंह जी के अतिशय अनुरोध से कुछ दिनों के लिये धर्मसमाज संस्कृत कालेज, मुजफ्फर के प्रधानाचार्य का पद आपने स्वीकार कर लिया था। दुर्भाग्य से एक वर्ष में ही आपका देहावसान हो गया।

अध्यापन के साथ साथ आपने बहुत से टीकात्मक एवं मौलिक ग्रन्थ भी लिखे। दर्शन के पठनपाठन में उस समय प्रचलित प्रायः सभी ग्रन्थों पर आपने टिप्पणियाँ की। केवल दार्शनिक-साहित्य ही नहीं किन्तु आपने शुद्ध साहित्य की रचनायें भी की थी। किन्तु आपकी प्रतिभा मूलतः भावयित्री होने के कारण आप के काव्य में पाण्डित्य का भी प्रकाशन होता है। आपका ग्रन्थ 'सुलोचना माधवचम्पू' दुर्भाग्य से अद्यावधि अप्रकाशित है। उसका एक श्लोक है:—

श्यामेयं सुषमेन्धनं सुरभिणा सन्धुक्षितं वायुना
कुर्वन्तं जगदुज्ज्वलं प्रसृतया सज्ज्योत्स्नया धूम्यया।
सम्पाद्यातनुमग्निमुज्ज्वलविधु भ्राष्ट्रङ्कपोलेऽध्वग-
प्राणान् भर्जतऋत्लाजनिकरो यद् दृश्यते खेङ्गने॥

भावार्थ–वसन्त की चन्द्रिका-चर्चित रजनी एक भड़भूँजे की दूकान है। रजनी ही भूँजने वाली है। उसकी शोभा ही उसका इन्धन है। सुरभि वायु फूंक लगा रही है। लपटों से सारी दिशायें उज्ज्वल हो उठी हैं। इस भट्टी में कामाग्नि प्रस्तुत

की गई है। चन्द्रमा ही पात्र है जिसमें विरहविधुर व्यक्तियों के प्राणों को रखकर भूँजा जावेगा। पूरे नभोमण्डल में स्थान स्थान पर छिटके हुये वियोगियों के प्राणरूप अन्न का लाग पड़ा हुआ है।

आपकी कविता के विषय में मङ्खक का श्लोक उद्धृत कर देना ही यथेष्ट होगा:—

नो शक्य एव परिहृत्य दृढां परीक्षा ज्ञातुं मितस्य महतश्च कवेर्विशेषः।
को नाम तीव्रपवनागममन्तरेण भेदेन वेत्ति शिखिदीपमणिप्रदीपौ॥

'मालविकाग्निमित्र' में परिव्राजिका का कथन था कि आचार्य की परीक्षा विद्यार्थियों की योग्यता के माध्यम से होती है। पं० बच्चा झा की अत्यन्त विख्यात शिष्य परम्परा आपकी यशःपता को अद्यावधि फहरा रही है। आपके कतिपय शिष्यों की नामावली नीचे प्रस्तुत की जा रही है।

स्वामी पूर्णानन्द, स्वामी परमानन्द, महामहोपाध्याय पं० बालकृष्ण मिश्र, पण्डित शशिनाथ झा (मिथिला विद्यापीठ दरभंगा में दर्शन शास्त्र के अध्यापक), पं० लक्ष्मीनाथ झा (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शनविभाग के प्रधानाध्यापक), पं० हरनाथ शास्त्री, पं० षष्ठीनाथ मिश्र इत्यादि।

आपकी रचनायें—

१. व्याप्तिपञ्चक की टीका।
२. सिद्धान्तलक्षणविवेचन।
३. अवच्छेदकत्वनिरुक्तिविवेचन।
४. व्याप्त्यनुगमविवेचन।
५. व्युत्पत्तिवादगूढार्थतत्त्वालोक।
६. शक्तिवादटिप्पण।
७. सव्यभिचारटिप्पण।
८. सत्प्रतिपक्षटिप्पण।
९. खण्डनखण्डखाद्यटिप्पण
१०. कुसुमाञ्जलिवर्धमानटिप्पण।
११. न्यायभाष्यटीका।
१२. अद्वैतसिद्धिचन्द्रिकाटिप्पण आदि।

प्रश्न

१. पं० बच्चा झा के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं लिखिये।
२. पं० बच्चा झा की दार्शनिक एवं साहित्यिक रचनाओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
३. पं० बच्चा झा के व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन कीजिये।



महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी

[जन्म ई. १८६०, निधन १९१०]

आपका जन्म काशी से कोस भर की दूरी पर स्थित खजूरी ग्राम में हुआ था। आपके जन्म के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती अत्यन्त प्रसिद्ध है। काशी से 'सुधाकर' नामक पत्रिका प्रकाशित होती थी। जिस समय यह पत्रिका इनके पितामह को प्राप्त हुई, उसी समय इनके जन्म का संवाद भी उन्हें प्राप्त हुआ। इसी कारण उन्होंने इनका नाम 'सुधाकर' रख दिया।

जीवन के आरम्भ काल में ही इन्हें अपनी जननी से सदैव के लिये अलग होना पड़ा। स्नेहमयी माँ का प्यार प्राप्त न हो सका। अत्यन्त दुलार के कारण उचित समय पर इनकी पढ़ाई प्रारम्भ न हो सकी। आठ वर्ष की अवस्था में इनका उपनयन संस्कार हुआ और तभी से पढाई भी आरम्भ हो गई। तीव्र बुद्धि के कारण शीघ्र ही इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

गाँव के आसपास के लोग इनके यजमान थे। इसी कार्य के निमित्त इन्हें व्याकरण आदि का अध्ययन कराया गया। 'सिद्धान्तकौमुदी', 'प्रौढ़मनोरमा' आदि ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन करने के पश्चात् पं० देवकृष्ण मिश्र जी से इन्होंने ज्योतिष का अध्ययन आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में भी एक कथा बड़ी प्रसिद्ध है। उन दिनों संस्कृत कालेज में ज्योतिष के प्रधानाध्यापक म. म. पंडित श्री बापूदेव शास्त्री थे। सुधाकर जी के पिता पण्डित कृष्णदत्त द्विवेदी इन्हें श्री बापूदेव शास्त्री के पास नाम लिखाने के लिये आये और दूर से ही इन के पिता ने शास्त्री जी को दिखाकर कहा कि तुम शास्त्री जी के पास जाओ मैं कुछ देर में दूसरा कार्य कर के आता हूँ। जब पिता जी लौटकर आये तो उन्होंने इन्हें श्री देवकृष्ण मिश्र जी के पास बैठा देखा। वे अत्यन्त क्रोधित हुये। सुधाकर जी ने कहा कि उनके हृदय में मिश्र जी के लिये ही गुरुभावना उदित हुई है. इस कारण वे ही उनके गुरु होंगे। सुधाकर जी ने उनसे ही पढ़ा।

इनकी प्रतिभा की एक जनश्रुति बहुत प्रसिद्ध है। म० म० बापूदेव जी ने ज्योतिष शास्त्र की 'अव्यक्तगणित' नामक पुस्तक का प्रथम भाग प्रकाशित कराया। इसकी एक प्रति पंडित देवकृष्ण मिश्र जी को देखने के लिये भेजी। सुधाकर जी ने उस पुस्तक को अपने गुरु से लेकर पढ़ा। पुस्तक लौटाते समय इन्होंने

कहा 'इस पुस्तक में अनेक अशुद्धियां हैं। मैंने उनका संशोधन कर दिया है। उस समय श्री बापूदेव शास्त्री का सभी लोहा मानते थे, अतएव श्री मिश्र ने इन्हें चुप रहने का संकेत किया परन्तु बापूदेव शास्त्री ने दूर से ही समझकर इन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने इनको अत्यन्त प्रोत्साहन दिया और कॉलेज के प्रिन्सिपिल के निकट इनकी प्रशंसा करते हुये उन्हें इनकी विलक्षण प्रतिभा से अवगत कराया। प्रिंसिपल ने इनका यथोचित सम्मान किया तथा पुरस्कार दिया। इसी समय इनके हृदय में उच्च भावनाओं का प्रवेश हुआ। उच्च लक्ष्य को ध्यान में रखकर इन्होंने पौरोहित्य कर्म का त्याग कर दिया और ज्योतिष के अध्ययन में तल्लीन हो गये। ज्योतिष शास्त्र के अमर विद्वानों में इनकी गणना होने लगी।

प्रकाण्ड विद्वान् होने पर भी कुछ दिनों तक इनकी जीविका की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी। जब इनके सैकड़ों उद्भट शिष्यों ने अपनी विद्वत्ता से सबको आकर्षित किया, तब दरभंगा के महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर ने इनकी प्रतिभा पहिचानी और इन्हें काशी की दरभंगा पाठशाला में ज्योतिषशास्त्र का अध्यापक नियुक्त किया। जीविका की समस्या के हल होते ही ये पूर्णरूप से ज्योतिष शास्त्र के पठन-पाठन में तल्लीन हो गये। बाद में काशिक राजकीय संस्कृत पाठशाला के प्रिंसिपल श्री 'थीबो' के साथ इन्होंने वराहमिहिर की 'पञ्चसिद्धान्तिका' का सुन्दर व्याख्या के साथ प्रकाशन किया। इससे प्रभावित होकर उक्त प्रिंसिपल महोदय ने इन्हें अत्यन्त श्रद्धा के साथ संस्कृतमहाविद्यालय में प्रधान पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। अपने कार्य काल में इन्होंने पुस्तकालय की खूब उन्नति की। एक प्रकार से इन्होंने इसे नवजीवन का दान दिया। दिन प्रतिदिन इनकी कीर्तिलता चारों ओर फैलने लगी और बड़े बड़े विद्वान् भी इनका लोहा मानने लगे।

पुस्तकालय की पूर्ण उन्नति करने के पश्चात् ये संस्कृत कालेज में ज्योतिष शास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुये। इनकी प्रतिभा से आकर्षित होकर दूर-दूर से छात्र आने लगे और प्राच्य एवं पाश्चात्य गणित का अध्ययन करने लगे। ये बड़े सफल अध्यापक थे। क्लिष्ट से क्लिष्ट विषय को ये इतनी सुन्दरता एवं स्वच्छता से प्रस्तुत करते थे कि छात्र मन्त्रमुग्ध हो जाया करते थे। समस्त छात्रगण इनका अत्यन्त आदर एवं सम्मान करते थे। इस प्रकार महान् परिश्रम के साथ इन्होंने

शिष्यों को पढ़ाया और उन्हें यथाशक्ति विद्यादान दिया। जीवन के अन्तिम काल तक ये विद्यादान देते रहे। इस पुनीत कार्य में संलग्न श्री सुधाकर जी जनवरी सन् १९१० ई० में स्वर्गवासी हो गये। इस समय इनकी अवस्था लगभग पचास वर्ष की थी।

जीवन पर्यन्त इन्होंने संस्कृत कालेज में अध्यापन किया। कुछ समय इसी महाविद्यालय में इन्होंने छात्रों को अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ने वालों को भी शिक्षा दी थी।

सुधाकर जी भारतीय गणित शास्त्र के सर्वमान्य प्रतिष्ठित आचार्य थे। विदेशों तक इनकी कीर्तिलता फैली हुई थी। ये स्वभाव के विनम्र एवं भक्त थे। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामायण' पढ़ते समय इनकी आँखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते थे। भगवान रामचन्द्र जी के भक्त होने के कारण अपने समस्त ग्रन्थों में इन्होंने भगवान राम का ही स्मरण एवं वन्दन किया है।

सुधाकर जी ने लगभग पचास पुस्तकों को प्रकाशित कराया। ज्योतिष शास्त्र के ये अमर ग्रन्थ हैं। ये भारतीय ज्योतिष शास्त्र के ही नहीं अपितु पाश्चात्य ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होंने पाश्चात्य गणित सिद्धान्तों पर भी संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे। म. म. बापूदेव शास्त्री ने प्राच्य एवं पाश्चात्य ज्योतिष धारा के सम्मिलन का प्रारम्भिक प्रयत्न किया था। सुधाकर जी ने उस धारा को महान शक्तिशाली बनाया। इस दिशा में इनका कार्य उल्लेखनीय है। इन्होंने पाश्चात्य सिद्धान्तों से अनेक उत्तम सिद्धान्तों को ग्रहण किया और उसे भारतीय सिद्धान्तों से इस प्रकार एक रस कर दिया कि आज उनकी भिन्नता दृष्टिगत नहीं होती। परन्तु यह पाश्चात्य गणित शास्त्र का पूर्ण रूपेण भारतीय करण ही था। अपनी दिव्य प्रतिभा के कारण इन्होंने भारतीय गणितशास्त्र को अनेक अमूल्य रत्नों से गुम्फित किया। पाश्चात्य गणित की सरल एवं सुन्दर प्रणाली को इन्होंने ग्रहण किया परन्तु उसका ग्रहण स्वाभाविक ही रहा। भारतीय रंग में पूर्णरूप से रंग कर ही ये उसे स्वीकार कर सके। यूरोप के नवीन प्रयोगों को वे संस्कृत में लाये। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम के संगम को स्थापित कर इन्होंने ज्योतिषगगन में अपना नाम 'सुधाकर' सार्थक सिद्ध किया।

द्विवेदी जी ने ज्योतिष शास्त्र में अनेक परिवर्तन किये हैं। इनके पूर्व भी

भारतीय ज्योतिष के इतिहास में परिवर्तन हुये थे। ग्रीक देशवासी यवनों एवं खलीफा अलमन सूर के समय अरब देश के गणितज्ञों से प्रभावित होकर भारतीय गणितशास्त्र आगे बढ़ा था। मुगल राज्यकाल में पारसियों के सम्मिलन से भी परिवर्तन हुआ था परन्तु जिस दृढ़ भित्ति पर इनके समय में यूरोपीय गणितशास्त्र का सम्मिलन हुआ, वैसा पूर्वकाल में दिखाई नहीं देता है। सम्मिलन के इस कार्य का श्रीगणेश श्रद्धेय म० म० बापूदेव शास्त्री ने किया था परन्तु इसकी सबल वेगवती धारा को प्रवाहित करने का श्रेय श्री द्विवेदी जी को ही प्राप्त है। भारतीय रंग में रंगा हुआ यह सम्मिलन अभूतपूर्व है और यही द्विवेदी जी के अपूर्व प्रतिभा का परिचायक भी है।

गणितज्ञों में उच्च आसन प्राप्त करने के साथ ही साथ ये सफल टीकाकार भी थे। श्री गणेशदवैज्ञकृत 'ग्रहलाघव' की इन्होंने बड़ी सुन्दर टीका की है। ये बड़े उदार एवं निष्पक्ष टीकाकार थे। इन्होंने सर्वप्रथम 'मल्लादिकृत' टीका की रक्षा करते हुये विश्वनाथ का उदाहरण देकर बाद में अपनी विशेष टीका का सन्निवेश किया। इसके पश्चात् इन्होंने सूर्यसिद्धान्त की 'सुधावर्षिणी' टीका की। इस टीका में इन्होंने कमलाकरकृत 'सौरवासना' टीका की एवं नृसिंहदैवज्ञकृत 'सौरभाष्य' की भी स्थान स्थान पर समालोचना की है। इस 'सुधावर्षिणी' ने सचमुच में सुधा बरसाई। जीवन के अन्तिम क्षण में इन्होंने नारायाण पण्डित की 'गणितकौमुदी' की उपपत्ति भी की। इस पुस्तक पर इनकी बड़ी श्रद्धा थी। इन्होंने अपने प्रिय शिष्य श्री बलदेव मिश्र जी से कहा था कि यदि चार पांच वर्ष और मैं जीवित रहा तो भास्कराचार्यकृत 'लीलावती' को भारतवर्ष से निकाल कर उसके स्थान पर 'गणितकौमुदी' को प्रतिष्ठित करूँगा।

टीकात्मक वाङ्मय के अतिरिक्त द्विवेदी जी ने इतिहास पर भी अपनी अमर लेखनी चलाई है। टीकानिर्माण के साथ साथ इन्होंने गणित का इतिहास भी लिखा है। इन्होंने हिन्दी में इस इतिहास को चार भागों में विभाजित किया था।

सुधाकर जी संस्कृत के साथ साथ हिन्दी साहित्य के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। हिन्दी भाषा में भी आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इसी कारण काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने आपको अपने उच्च आसन पर आसीन करके आपका यथोचित सम्मान किया।

आपने १८ वर्ष की छोटी सी अवस्था में ही महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त करके अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया था।

अठारह वर्ष की अवस्था में ही सुधाकर जी ने दीर्घवृत्त नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इनके ग्रन्थ पाण्डित्यपूर्ण एवं ज्ञान के भंडार हैं। ये ज्योतिष गगन के अमर नक्षत्र हैं, ज्योतिष शास्त्र के महान स्तम्भ हैं।

आपके अनन्तर आपके पुत्रों ने भी आपकी कीर्ति लता को अक्षुण्ण रखा। आपके ज्येष्ठ पुत्र पण्डित अच्युताकर द्विवेदी तहसीलदार थे तथा द्वितीय पुत्र पण्डित कमलाकर द्विवेदी अवकाश प्राप्त कलेक्टर हैं। तृतीय पुत्र पंडित पद्माकर द्विवेदी ज्योतिषाचार्य अवकाश प्राप्त राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के अध्यापक हैं। आपकी ज्योतिष सम्बन्धी रचनायें निम्नलिखित हैं—

१. दीर्घवृत्त
२. ग्रहकरण
३. द्युचरचार।
४. यंत्रराज
५. करणकुतूहल
६. करणप्रकाश।
७. चलन-कलन
८. चलराशिकलन
९. करण कुतूहल।
१०. पिंडप्रभाकर।
११. छादकनिर्णय
१२. पञ्चाङ्गप्रपञ्च।
१३. पञ्चाङ्गविचार
१४. शिष्यधीवृद्धिदः
१५. पञ्चसिद्धान्तिका
१६. बृहत्संहिता
१७. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त।
१८. महासिद्धान्त।
१९. ग्रहलाघव।
२०. दिङ् मीमांसा।
२१. गणकतरङ्गिणी।
२२. लीलावती।
२३. बीजगणित।
२४. सिद्धान्ततत्त्वविवेक।
२५. गणित का इतिहास।
२६. समीकरण मीमांसा।
२७. भाभ्रमरेखानिरूपण।
२८. धराभ्रम के सम्बन्ध में प्राचीन एवं नवीनों का वादविवाद।
२९. गणितकौमुदी।
३०. सूर्यसिद्धान्त।
३१. वृत्तान्तर्गतसमसप्तदशभुजक्षेत्ररचनाप्रकार।
३२. वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नतिसाधन।

हिन्दी साहित्य विषयक रचनायें:—

१. तुलसी सुधाकर ।
२. पद्मावत टीका ।
३. रामकहानी ।
४. हिन्दी व्याकरण ।
५. भाषाबोध ।
६. ज्योतिषवेदाङ्ग ।
७. वर्गकोष्टपूरणरीति ।
८. सशल्यबाणनिर्णय ।
९. हरिश्चन्द्र कुण्डली ।

प्रश्न

१. पं० सुधाकर द्विवेदी के सम्बन्ध में एक छोटा लेख प्रस्तुत कीजिये ।

२. सुधाकर द्विवेदी का भारतीय ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में महत्व निरूपित कीजिये ।

३. 'सुधाकर जी और हिन्दी साहित्य' विषय पर एक निबन्ध लिखिये ।



विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा

[जन्म वि० सं० १६२३, निधन १६६६]

उच्चैर्गतिर्जगति सिध्यति धर्मतश्चेत् तस्य प्रमा च वचनैः कृतकेतरैश्चेत् ।
तेषां प्रकाशनदशा च महीसुरैश्चेत् तानन्तरेण निपतेत् क्व नु मत्प्रणामः ॥

(भोजराज)

पाश्चात्य संसार में विज्ञान और परम्परा का अत्यन्त प्राचीन काल से संघर्ष रहा। परम्परागत विचारों का जब जब विज्ञान ने विरोध किया तब तब विज्ञान को तिरस्कृत होना पड़ा। किन्तु यह विचित्र और मनोरञ्जक तथ्य है कि भारतवर्ष में विज्ञान और परम्परा में वैसा संघर्ष नहीं मिलता। एक उदाहरण इस बात को अधिक स्पष्ट कर देगा। ईसाई परम्परा में सूर्य स्थिर पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करता है। गेलीलिओ ने इसका खण्डन करने का साहस किया जिसका परिणाम सुविदित है। इसके विरुद्ध भारतीय परम्परा में ग्रहण के लगने का कारण बताया गया है राहु-केतु द्वारा चन्द्र-सूर्य को ग्रस्त करना। वराहमिहिर इस अवैज्ञानिक कारण की 'बृहत्संहिता' में निष्पक्ष समालोचना करता है किन्तु भारतीय परम्परा ने इस लिये वराहमिहिर के प्राणघात की चेष्टा नहीं की। इतना ही नहीं आंग्लसभ्यता के सम्पर्क से पाश्चात्य भौतिक विज्ञान का जब भारत में प्रवेश हुआ और कई कारणों से भारतीय संस्कृति और संस्कृत-साहित्य विशेषतः वैदिक साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का पुनरुत्थान हुआ तब कतिपय विद्वानों ने भारतीय प्राचीन परम्परा के माध्यम से पाश्चात्य भौतिक विज्ञान की व्याख्या की और एतदर्थ वैदिक साहित्य का विज्ञानपरक अर्थ करना प्रारम्भ किया। ऐसे विद्वानों में समीक्षा-चक्रवर्त्ती विद्वद्वर पण्डित मधुसूदन झा विद्यावाचस्पति का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है।

विद्यावाचस्पति जी का जन्म वैक्रम १९२३ की कृष्णाष्टमी तिथि में हुआ था। रेलवे स्टेशन सीतामढ़ी से दक्षिण की ओर आठ मील दूर 'गाढ़ा' नामक आपका जन्म ग्राम बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में है। पिता पं० वैद्यनाथ झा एक सुप्रतिष्ठित मैथिल ब्राह्मण थे। यह कुल अपने विद्वान् पुरुषों की अनिरुद्ध परम्परा के कारण प्राचीन काल से विख्यात है। आपके पितृव्य पण्डित राजीवलोचन झा जयपुर महाराज स्वर्गीय रामसिंह जी की राजसभा के समादृत

सभ्य थे। निस्सन्तान होने के कारण पण्डित राजीवलोचन झा ने बालक मधुसूदन को अपना दत्तक-पुत्र बनाया। उपनयन आदि संस्कार भी उन्होंने ही किये। उपनयन संस्कार के पश्चात् पं० राजीवलोचन झा मधुसूदन को अपने साथ जयपुर ले आये और वहाँ के विद्वानों की देखरेख में इनकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। अनुकूल वातावरण पाकर कुशाग्रबुद्धि बालक की प्रतिभा पनपने लगी। आप अत्यन्त परिश्रम और उत्साह से विद्यार्जन करने लगे। प्रसङ्गात् राजसभा में जाने पर महाराजा रामसिंह उत्साही बालक की परीक्षा लेते थे। 'होनहार बीरवान के होत चीकने पात।' आपकी प्रतिभा का वैलक्षण्य बाल्यकाल में ही दिखाई देने लगा था। महाराज की कृपादृष्टि तब से ही आपके ऊपर थी। इस प्रकार जब मधुसूदन विद्यार्जन कर रहे थे तब ही आपके पितृव्य पं० राजीवलोचन जी का देहावसान हो गया। बालक पर विपत्ति के बादल घिर गये।

अन्ततोगत्वा बालक मधुसूदन अपनी चाची के साथ अपनी जन्मभूमि को लौट आये। 'गाढ़ा' ग्राम में विद्यार्जन का कोई साधन नहीं था अत एव मधुसूदन जी का वहाँ चित्त न रमा और विद्याव्यसनी मधुसूदन विद्याकेन्द्र काशी की ओर चल पड़े। काशी आकर आप दरभंगा संस्कृत विद्यालय में तत्कालीन विद्वानों में सुप्रतिष्ठित महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री की अध्यक्षता में विद्याध्ययन करने लगे। अनवरत आठ वर्षों तक उत्कट परिश्रम एवं लगन से अध्ययन करने का परिणाम यह हुआ कि पण्डित झा ने शीघ्र ही न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि शास्त्रों के ऊपर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। आपका कीर्त्तिसौरभ चारों ओर बिखरने लगा। आपकी ख्याति में आपकी मेधा एवं श्लाघनीय अध्यवसाय का तो हाथ था ही किन्तु भूतभावन भगवान् शङ्कर का वरदहस्त भी उसमें कारण था।

विद्याध्ययन के पश्चात् पं० मधुसूदन झा काशी से फिर अपने जन्मग्राम को लौट आये। १७ वर्ष की अवस्था में आपका परिणय अलवर के राजगुरु पं० चञ्चल झा मन्त्रशास्त्री की स्वस्तिमती कन्या से हो गया।

इसी समय जयपुर के महाराज ने आपके विद्यागरिमा की ख्याति सुनी और आपको साग्रह जयपुर बुलवाया। जयपुर में जाकर आप 'महाराजा कॉलेज' में प्राध्यापक नियुक्त हुये। तत्कालीन महाराज श्री माधव सिंह आपकी विद्वत्ता और प्रखर पाण्डित्य से प्रभावित हुये। **'गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति'**—

गुणग्राहक महाराज ने आपको अपने राजकीय पुस्तकालय का प्रमुख प्रबन्धक और मौज मन्दिर (धर्मसभा) का प्रधान अधिकारी बनाया। महाराज के साथ आपकी शास्त्रीय चर्चा नित्यप्रति हुआ करती थी। वे कोई भी धार्मिक कृत्य आप की अनुमति के बिना नहीं करते थे। राजनीतिक समस्याओं और शासनकी व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में भी आपकी सम्मतियाँ राजशासन में सुस्थिरता लाती थीं। आप न केवल शास्त्रों में ही नैपुण्य रखते थे अपितु शासननीति में भी पूर्ण प्रवीण थे, अतः समय समय पर राजनैतिक विषयों में आपसे महाराज का वार्तालाप होता रहता था। इस प्रकार आप स्वर्गीय जयपुरेन्द्र के उच्चकोटि के कृपापात्रों में से बन गये और महाराज के नवरत्नों में आप की गणना होने लगी। जयपुर राज्य के उच्च सामन्तों के समान आप आदरणीय थे और आपका प्रभाव राज्यवर्ग में तथा प्रजाजनों में बहुत विशेष था। आप को महाराज ने आजीविका भी पूर्ण दे रखी थी। इसलिये रईसों के समान ही आप का जीवन बीता।

जयपुरेन्द्र आप को सर्वदा अपने साथ रखते थे। यहाँ तक कि जब वे १९०२ में सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के अवसर पर निमंत्रित होकर इंगलेण्ड गये तो अपने साथ आप को भी लेते गये। आप ने वहाँ यूरोपीय संस्कृत विद्वानों द्वारा आयोजित सभा में धाराप्रवाह संस्कृत में 'वैदिक विज्ञान' पर भाषण दिया जो वहाँ अत्यधिक प्रशंसित हुआ। केम्ब्रिज के विद्वान् मेकडोनेल्ड, ऑक्सफर्ड के बेण्डेल और लन्दन अजायब घर के टॉमस आदि विद्वान् बहुत प्रभावित हुये और उन्होंने आपका स्वागत किया। विलायत के पत्रों में अनेक दिनों तक आपके भाषण की चर्चा होती रही। सम्राट् एडवर्ड सप्तम ने आप को एक स्वर्ण पदक भी समर्पित किया।

पण्डितजी का सारा जीवन वैदिक विज्ञान के अन्वेषण में ही व्यतीत हुआ। जीवन के प्रारम्भ से लेकर मृत्युशय्या के अन्तिम क्षण तक वेदविद्या के आप असाधारण उपासक बने रहे। 'व्यसनं श्रुतौ' के आप ज्वलन्त उदाहरण थे। लगभग ५० वर्षों तक आपके अनवरत अन्वेषण कार्य के फलस्वरूप आपके लिखे हुये शताधिक ग्रन्थ आज वर्तमान हैं। आपके वैदिक मन्त्रों की विज्ञानपरक व्याख्या अभूतपूर्व है। अनेक समय विविध विद्वत्परिषदों में आपने उन मन्त्रों की व्याख्या कर श्रोताओं को चमत्कृत कर दिया था।

भारतधर्ममहामण्डल के महाधिवेशनों में आप प्रायः उपस्थित रहते थे। सन् १९०६ में काशी कांग्रेस के अवसर पर भारतधर्म महामण्डल का अधिवेशन हुआ था जिसमें आपने भी विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया था जिससे उपस्थित पाश्चात्य विद्वान् भी अत्यन्त प्रभावित हुये थे। इसी प्रकार १९६२ वि० सं० में कुम्भ के अवसर पर त्रिवेणी के महाधिवेशन में आपके भाषण से मुग्ध विद्वान् नतमस्तक हो गये थे। इस अवसर पर भारतधर्ममहामण्डल ने आप को क्रमशः 'विद्यावाचस्पति' तथा 'महामहोपदेशक' की उपाधियाँ अर्पित कीं। आप की प्रवचनशैली बहुत ही उच्चकोटि की थी। आप श्रोताओं के हृदय में वस्तु पूर्णरूपेण बिठा दिया करते थे। अद्भुत श्रोतागण विषयों को श्रवणगोचर कर चकित तथा मुग्ध हो जाते थे। कोई भी विषय जब तक जिज्ञासुओं को समझ में पूरे तौर से न आ जाता तब तक आप अनेक प्रकार से घण्टों तक उस वस्तु की मीमांसा करते ही रहते थे। इस कार्य में आप का मस्तिष्क कभी थकता ही नहीं था।

सन् १९९६ विक्रम संवत् भाद्रशुक्ल अमावस्या को इस भौतिक जगत् का परित्याग कर आप ने स्वर्गारोहण किया।

शिष्यपरिचयः—आपके सम्बन्ध में उपर्युक्त कुछ वाक्योच्चयों को लिखने के बाद आपके शिष्यों में से कुछ विशिष्ट शिष्यों का नामोल्लेख करना प्रायः प्रकरण के बाहर की बात न होगी।

१—सर्व श्री महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी अवकाश प्राप्त, डायरेक्टर आव् संस्कृत स्टडीज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

२—राजगुरु पण्डित चन्द्रदत्त चौधरी, रिटायर्ड प्रधान व्याकरणाचार्य, संस्कृत कालेज, जयपुर।

३—पण्डित सूर्यनारायणजी आचार्य, अवसर प्राप्त प्रधान संस्कृताध्यापक, महाराजा कालेज, जयपुर।

४—पण्डित कन्हैयालालजी न्यायाचार्य, रिटायर्ड प्रधान न्यायाध्यापक संस्कृत कालेज जयपुर।

५—पण्डित मदनलाल जी व्याकरणाचार्य, रिटायर्ड प्र० धर्मशास्त्राध्यापक, संस्कृत कालेज जयपुर।

६—पण्डित जयचन्द्र झा वेदतीर्थ, वेदान्ताध्यापक, संस्कृत कालेज, जयपुर।

७—पण्डित मोतीलाल जी शास्त्री, शतपथसम्पादक, बालचन्द्र यन्त्रालयाध्यक्ष, जयपुर।

८—पण्डित आद्यादत्त ठाकुर एम० ए० संस्कृत प्राध्यापक लखनऊ विश्वविद्यालय।

इन विद्वान् शिष्यों के अतिरिक्त कतिपय महाराजाधिराज भी आपके शिष्य थे जिनमें जयपुरनरेन्द्र श्री मानसिंह जी का नाम उल्लेखनीय है। अलवर के नरेश ने तो अपने यज्ञोपवीत के अवसर पर आपसे दीक्षा भी ग्रहण की थी। स्वर्गीय महाराज किशनगढ़, स्वर्गीय भूतपूर्व काशी नरेश तथा शाहपुराधीश भी आपके प्रशंसकों में से थे।

आपकी रचनायें:—

१. जगद्गुरुवैभवः—इस ग्रन्थ में १५००० वर्ष पहिले के वैदिक आदि ब्रह्मा का ऐतिहासिक और दोनों प्रकार का वर्णन है, ब्रह्मा कौन थे, कब थे, कहां थे, इत्यादि बातों का सविस्तर विवेचन है। प्रकरणागत पुराणों की उत्पत्ति भी समझाई गयी है। बहुत ही प्राचीन इतिहास तथा भौगोलिक विषय का यह अपूर्व ग्रन्थ है।

२. इन्द्रविजय—इसमें भौम, दिव्य और शारीर इस त्रैलोक्य का विवेचन, भारतवर्ष तथा हिन्दुस्थान दोनों नामों का विवरण, पूर्वकालिक भारतवर्ष की सीमा, नदी, पर्वतादिकों के प्राचीन नाम और स्थान, भारतवर्ष की प्राक्तन विया का एक अंश होना और सिंहलद्वीप का लङ्का न होना इत्यादि बातें अनेक प्रमाणों से सिद्ध की गई हैं। आर्य-लोग बाहर से आये इस कल्पना को भी युक्तिप्रमाण से निर्मूल सिद्ध किया गया है। संक्षेप में वैदिक इतिहास और भूगोल के अत्यन्त विमर्शपूर्ण विवरण है।

३. सदसद्वाद—इसमें सत् असत् और सदसत् इन तीनों तत्त्वों की सृष्टि का मूल मानकर उनका वैज्ञानिक विवेचन किया गया है और प्रसंगवश जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मोह, मूर्च्छा, मृत्यु और मोक्ष जीवात्मा की इन सात अवस्थाओं का वर्णन है।

४. व्योमवाद—इसमें आकाश ही सृष्टि का प्रभव प्रतिष्ठा और प्रलयस्थान है इसका विवेचन है।

५. अपरवाद—इसमें काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत, योनि और

पुरुष इन सात तत्त्वों के पारस्परिक संयोग से विश्व की उत्पत्ति का समर्थन किया गया है।

६. आवरणवाद—इसमें वय, वयुन और वयोनाध नामक तीन तत्त्वों से सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है।

७. अम्भोवाद—इसमें जल को जगत् के उत्पत्ति और प्रलय का कारण बता कर, जल की घन, तरल और विरल अवस्थाओं को समझा कर उसकी मूलकारणता सिद्ध की गई है।

८. अहोरात्रवाद—इसमें क्रमशः (अहः) और तम (रात्रि) इन दोनों के ज्ञान, अज्ञान आदि १० भेदों का और उनसे सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है।

९. संशयतदुच्छेदवाद—इसमें सृष्टि के विषय में जितने मतभेद हैं उनका निरूपण करके निराकरण किया गया है। परमेश्वर, ईश्वर, जीव, आत्मा, सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु, उपासना, मोक्ष आदि अनेक दुरूह विषयों का निरूपण करके वैज्ञानिक रीति से उत्तर दिया गया है। यह ग्रन्थ यथार्थ में ब्रह्मविज्ञान के विषयों के संशय का उच्छेद करने वाला उत्तम विवेचनापूर्ण अत्यन्त उपयोगी है।

१०. दसवादरस्य—इसमें जैसे आजकल षड्दर्शन हैं वैसे ही वैदिक काल में दशवाद प्रचलित थे उन्हीं दशवादों का संक्षिप्त विवरण है।

११. गीता विज्ञान भाष्य-प्रथम रहस्य काण्ड—इसमें गीता के आचार्य श्रीकृष्ण, गीता के नामरहस्य, शास्त्र रहस्य और विषय रहस्य इनके वैज्ञानिक विवेचन किये गये हैं।

१२. शारीरकविमर्श—इसमें स्वतन्त्ररूप से शारीरक दर्शन के विषयों पर आलोचनात्मक प्रकाश डाला गया है। उसका सार सङ्कलन वैज्ञानिक ढङ्ग से किया गया है और सरलता से समझने के लिए कई चित्र भी दिये गये हैं।

१३. विज्ञानविद्युत—इसमें वैदिक विज्ञान में प्रविष्ट होने वालों के बोधसौकर्य के लिए वैदिक परिभाषायें सरलता से समझाई गई हैं।

१४. ब्रह्मविज्ञान प्रवेशिका—इसमें ब्रह्मविज्ञान की प्रारम्भिक परिभाषा हिन्दी में समझायी गयी है।

१५. ब्रह्मविज्ञान—[हिन्दी भाषा] इसमें ब्रह्मविज्ञान के विषय में अनेक संशयों को दूर करते हुए सृष्टि के विषय में मतभेदों का निरूपण तथा निराकरण

किया गया है। यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा में होने के कारण अत्यन्त उपयोगी है। जो विषय अनेक शास्त्रों के अवलोकन से वर्षों में अच्छी तरह समझ में नहीं आता है वह इसके अवलोकन से बहुत सरलता से जाना जा सकता है।

१६. ब्रह्मचतुष्पदी—इसमें १. प्रजापति, २. विराट्, ३. आत्मा और ४. आत्मगति इन चार पदार्थों का सुविशद वैज्ञानिक विवेचन है। इसके यथाविधि अध्ययन से वैदिक विज्ञान की अनेक ग्रन्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं।

१७. ब्रह्मसमन्वय—इसमें निर्विशेष, परात्पर, अव्यय, अक्षर, क्षर इत्यादि आत्मतत्त्वों का और उनसे सृष्टि आदि का बड़ा सुन्दर वैज्ञानिक विवरण सिद्धान्त दृष्टि से किया गया है।

१८. देवतानिवित्—इसमें याज्ञिक देवताओं का वर्णनात्मक वैज्ञानिक संग्रह है। प्रसङ्गतः प्राणविद्या, यज्ञविद्या, आत्मगति विद्या आदि आवश्यक विषयों का वर्णन है। शरीर में आत्मतत्त्व कितने हैं उनका तत्त्व समझा गया है।

१९. स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्याय
२०. यज्ञोपकरणाध्याय
२१. यज्ञविटपाध्याय
२२. कर्मानुक्रमणिकाध्याय
२३. अत्रिख्याति
२४. वैदिककोष
२५. कादम्बिनी–हिन्दीभाषानुवाद
२६. पितृसमीक्षा
२७. आशौचपञ्जिका
२८. प्रत्यन्तप्रस्थानमीमांसा—इसमें किस तरह की विलायतयात्रा शास्त्र-विरुद्ध नहीं है इसका निर्णयात्मक विवेचन है।
२९. वेदधर्म व्याख्यान
३०. वेदार्थभ्रमनिवारण—हिन्दीभाषा

अमुद्रित ग्रन्थ :—

१. महर्षिकुलवैभव
२. स्वर्गसन्देश
३. रजोवाद
४. अमृतमृत्युवाद
५. दैववाद
६. सिद्धान्तवाद
७. ब्रह्महृदय
८. ब्राह्मणहृदय
९. तृतीय–आचारकाण्ड–गीताविज्ञानभाष्य
१०. चतुर्थहृदयकाण्ड „

११. जिनद्वती
१२. निविद्वती
१३. गाथावती
१४. आख्यानवती
१५. निरुक्तिमती
} निगमबोध में

१६. ब्रह्मगिरि
१७. ब्रह्मद्रवी
१८. दर्शनहृदय (दर्शनपरिष्कार)
१९. ब्रह्मविनय
२०. भौतिकसाइन्स प्रदीप
२१. शारीरकसाइन्सप्रदीप
२२. पञ्चभूतसमीक्षा
२३. वैश्वरूपनिवित्
२४. सत्यनिवित्
२५. आत्मनिवित्
२६. वेदनिवित्
२७. भूतनिवित्
२८. यज्ञविहाराध्याय
२९. मन्त्रप्रचरणाध्याय
३०. आध्यात्मिकाध्याय
३१. आधिदैविकाध्याय
३२. यज्ञोपपादनाध्याय
३३. अधियज्ञविज्ञान
३४. यज्ञसरस्वती
३५. छन्दोभ्यस्ता
३६. शुल्वसूत्र
३७. स्थालीपाक
३८. आधान
३९. अग्निहोत्र
४०. आग्रायण
४१. दर्शपूर्णमासपद्धति
४२. चातुर्मास्यपद्धति
४३. निरूढपशुबन्ध
४४. अहीनद्वादशाहपद्धति
४५. ज्योतिष्टोम
४६. चयनपद्धति
४७. उपनिषद् हृदयम्

इस प्रकार शताधिक ग्रन्थ आपके लिखे हुए हैं जिनका नामोल्लेख एवं परिचय स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिया जासका।

प्रश्न

१ विद्यावाचस्पति जी और वेद इसके ऊपर महत्त्वपूर्ण टिप्पणी लिखिये।
२ विद्यावाचस्पति जी के जन्म स्थान का वर्णन संक्षेप में कीजिये।
३ विद्यावाचस्पति जी की विद्वत्ता और उनकी रचनाओं पर एक निबन्ध लिखिये।

महामहोपाध्याय पं० मुरलीधर झा

[जन्म वि० सं० १९२६, निधन १९८६]

'विद्यया भास्करः साक्षात् क्षमया करुणाकरः ।
कलाधरः समुन्नत्या संज्ञया मुरलीधरः ॥'

(सरस्वती सुषमा)

म० म० पण्डित मुरलीधर झा के पिता पण्डित चानन झा दरभंगा जिले के 'भराम' ग्राम निवासी थे। पं० चानन झा का विवाह मिथिलाभूमि की एक सुप्रसिद्ध नगरी 'श्यामसिद्धव' में हुआ था। इनकी आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय थी। अतः सम्पत्तिसम्पन्न इनके श्वशुर ने विपुल धन सम्पत्ति देकर अपनी सौभाग्यवती कन्या 'लीलादेवी' तथा अपने जामाता पं० चानन झा को सदा के लिये 'श्यामसिद्धव' में ही बुला लिया। यहीं पर अपने मातृक में मुरलीधर जी का प्रादुर्भाव १८६९ ई० में हुआ। इनके मातामह पण्डित फकिरन झा एक 'योग्य' मैथिल ब्राह्मण थे। पण्डित फकिरन झा का विवाह 'चपाही' राज्य के राजा रसिकनारायण सिंह की कन्या से हुआ था। फलतः इनके मातृमातामह एक राज खानदान के सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे। 'चपाही' राज्य मिथिला में दरभंगा राज्य से पहले भी मैथिल ब्राह्मणों का एक सुन्दर राज्य था। यह 'चपाही' ग्राम दरभंगा जिले में राजनगर स्टेशन से पांच मील की दूरी पर आज भी वर्तमान है तथा उस राजवंश के लोग आज भी वहाँ निवास करते हैं।

पं० झा की प्रारम्भिक शिक्षा अपने छोटे भाइयों एवं मामा के लड़कों के साथ अपनी जन्मभूमि में ही हुई थी। सर्वप्रथम मिथिलाक्षर देवनागरी तथा कैथी लिपि की शिक्षा इन्हें दिलाई गयी। इसके बाद दशकर्म पद्धति की शिक्षा के अनन्तर इन्हें फारसी की शिक्षा भी दिलवायी गयी जो उस समय के पढ़े लिखे प्रत्येक भारतीय के लिए आवश्यक थी। इस प्रकार कुछ प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहणकर अपने पैतृक भराम के सुप्रसिद्ध ज्यौतिषी पं० विद्या झा से ज्यौतिषशास्त्र के बहुत से ग्रन्थों का आपने अध्ययन किया। आपके गुरुजी की आप पर असीम कृपा थी। स्नेहातिरेक के कारण आपके गुरुजी ने आपको पढ़ने में पूर्ण सुविधा दी। मिथिला में इस प्रकार विद्या ग्रहण कर १६ वर्ष की अवस्था में आपने काशी जाकर स्वनामधन्य सुधाकरस्वरूप महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी से पढ़ना आरम्भ

किया। द्विवेदी जी की शिष्यता में रहकर क्वींसकालेज से पण्डित झा ने ज्यौतिषाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इस परीक्षा में आपको सर्वप्रथम स्थान मिला था। मध्य में आपने नैयायिक चक्रचूड़ामणि पण्डित मधुसूदन झा से मुग्धबोध व्याकरण, न्याय के कतिपय मौलिक ग्रन्थ, काव्य तथा साहित्य के भी अनेकानेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। साहित्य में आपकी व्युत्पत्ति अपूर्व थी। भारतीय गणित के तो आप आचार्य थे ही साथ ही पाश्चात्य गणित के ऊपर भी आपका अधिकार था। आपकी व्युत्पत्ति की विशेषता के परिचायक दो एक दृष्टान्त दिये जा रहे हैं। पं० झा ने वराहमिहिरविरचित बृहत्संहिता नामक बृहद् ग्रन्थ का—जो खण्डितप्राय हो चुका था तथा जिसमें जगह-जगह पर बहुत से अक्षर उड़ गये थे, बड़ी बुद्धिमानी के साथ सुधार किया। जीर्ण-शीर्ण पुस्तक होने के कारण उस ग्रन्थ के बहुत से अक्षर नष्ट हो गये थे। झा महोदय ने उस ग्रन्थ की त्रुटियों की पूर्ति इस प्रकार की कि बाद में किसी को इस बात का पता नहीं चल सका कि किस जगह पर कैसी त्रुटि थी और कहां पर कौन सा अक्षर जोड़ा गया है। आपकी इस प्रकार की व्युत्पत्तिविलक्षणता को देखकर विद्वत्समाज चकित हो गया। तत्कालीन काशी के सुप्रतिष्ठित विद्वान् म० म० पं० गंगाधरशास्त्री ने जो साहित्य के अवतार माने जाते थे, आपके गुरु के समक्ष आपकी व्युत्पत्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इस ग्रन्थ के सम्पादन से आपका पूर्ण यश हुआ। आपके इस कार्य से प्रसन्न होकर काशिकराजकीय संस्कृत पाठशाला के तत्कालीन प्रिंसिपल 'थी बो' ने बिना प्रार्थनापत्र के आपको तार द्वारा बुलाकर अपने कालेज में ज्यौतिषशास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्त किया। अपने अध्यापनकाल में आपकी यहाँ पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। आपके सैकड़ों सुयोग्य शिष्य निकले। सच्ची बात तो यह है कि म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी के बाद उनकी प्रतिष्ठा को रखने वाले ज्योतिर्विद्याविशारदों में आपका ही नाम प्राथम्येन लिया जाता है। भारतवर्ष में म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी जी के बाद गणितज्ञों में महामहोपाध्याय की उपाधि से एक मात्र आप ही विभूषित हुए।

पण्डित झा त्रिस्कन्ध ज्यौतिष, साहित्य आदि शास्त्रों के अतिरिक्त संगीत विद्या के भी मर्मज्ञ थे। सितार बजाने में तो आपकी अतिशय प्रसिद्धि थी। समय समय पर बड़े बड़े संगीत विद्याविशारद भी आपका लोहा मानते थे। योगशास्त्र

में भी आपकी पूर्ण प्रगति थी तभी तो आपने 'शिवस्वरोदय' नामक योग-ग्रन्थ की सुन्दर टीका की है। मैथिल विद्वान् होने के नाते तन्त्रशास्त्र में आपने पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

हिन्दू संस्कृति में अनुष्ठान का बड़ा महत्व है। भौतिक विज्ञान की गन्ध लगने के कारण जो लोग यज्ञ करने कराने वालों को अन्धविश्वासी शब्द से पुकारते हैं, वे लोग भी विशेष संकट की अवस्था में स्वयं अनुष्ठान करते एवं कराते हैं। स्वर्गीय झा जब विद्यार्थी जीवन समाप्त कर समुचित जीविका की प्रतीक्षा में बैठे उस समय इन्होंने काशी के अन्नपूर्णा मन्दिर में एक वृहत् अनुष्ठान किया था। इसी अनुष्ठान के बाद ये जीवन भर राजाओं के समान सुखी रहे।

पं० झा अपनी जन्मभूमि मिथिला तथा उसकी मातृभाषा मैथिली के प्रति असीम अनुराग रखते थे। एक समय इनके गुरु म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी ने 'रामकहानी' नाम की एक पुस्तक हिन्दी में लिखी थी। उस पुस्तक के प्रकाशन के समय प्रूफ संशोधन का भार इनको ही सौंपा गया था। एक जगह पर उस पुस्तक में लिखा था—'सती सीमन्तिनी सीता की जन्मभूमि होने के कारण मिथिला अतिपवित्रभूमि मानी जाती है'। पं० झा ने इस पङ्क्ति को बदल कर इस प्रकार लिख दिया। 'मिथिला भूमि को अतिपवित्र समझ कर ही सीता जी ने वहां अवतार ग्रहण किया था।' इस परिवर्तन को देख कर गुरुजी ने इनसे पूछा—'तुमने ऐसा क्यों किया, इस परिवर्तन से तो मेरा सारा प्रकरण बिगड़ रहा है, इस पर झा महोदय ने झटिति बड़ी निर्भीकता एवं साहस के साथ जवाब दिया—'गुरुदेव ? आपका तो प्रकरण बिगड़ रहा है किन्तु आपके वाक्य से तो मेरा देश बिगड़ रहा है।' प्रिय शिष्य की इस बात पर गुरुदेव को बड़ी हँसी आयी। हँसते हुए कहा, जाओ जैसी तेरी इच्छा हो वैसा ही करो। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मिथिला भाषा के प्रचार के लिये पं० झा अपने सम्पादकत्व में काशी से 'मिथिलामोद' नामक मैथिली भाषा की एक पत्रिका प्रकाशित करते थे। इस पत्रिका द्वारा इन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक मातृभाषा मैथिली की सेवा की।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' गीता की इस अमर वाणी में सत्यता कूट कूट कर भरी है। प्रकृति परिवर्तन शील है। जो जन्म लेता है

उसकी मृत्यु अवश्य होती है इसके अनुसार झा महोदय ६ दिसम्बर १९२९ ई० को अपनी जीवन लीला समप्त कर दिवंगत हो गये।

आपके छात्रों की संख्या बहुत अधिक है सबका परिचय देना स्वल्पायास साध्य नहीं तथापि निम्नांकित कुछ उल्लेखनीय विद्वानों का संक्षिप्त परिचय देना अप्रासङ्गिक न होगा।

१. पण्डित बबुआजी मिश्र—भूतपूर्व व्याख्याता, मैथिलीसाहित्य, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

२. गणकपुंगव स्व० पण्डित चन्द्रशेखर झा—ज्यौतिषसाहित्याचार्य। आप काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में ज्यौतिषाध्यापक थे।

३. स्व० पण्डित गंगाधर मिश्र—ज्यौतिषाचार्य, काव्यतीर्थ, आप संस्कृत कालेज वैद्यनाथधाम में ज्यौतिषाध्यापक थे।

पण्डित मुरलीधर ठाकुर—ज्यौतिषाचार्य। आप भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों गणितशास्त्रों पर पूर्ण अधिकार रखते हैं।

५. पण्डित बलदेव मिश्र—आप ज्यौतिषशास्त्र के विशिष्ट मर्मज्ञ विद्वान् हैं। इस समय पटना जायसवाल रिसर्च इन्स्टीच्यूट में बौद्ध दर्शन के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं।

६. पं० अजबलाल ठाकुर—अध्यापक संस्कृत विद्यालय, मटिहानी।

७. पं० सीताराम झा—ज्यौतिषाचार्य, प्रधानाध्यापक, संन्यासी संस्कृत कालेज, काशी।

८. पं० मधुकान्त झा—ज्यौतिषाचार्य, तीर्थ, अध्यापक, श्री रानी चन्द्रावती श्यामा संस्कृत महाविद्यालय, काशी।

९. स्व० पं० अनूपमिश्र—आप राजकीय संस्कृत महाविद्यालय काशी में ज्यौतिषाध्यापक थे।

इन लोगों के अतिरिक्त स्वर्गीय पण्डित उमाकान्त झा, पं० श्री सुधाकर झा, पं० श्री सरयूरमण झा, पण्डित पूर्णचन्द्र त्रिपाठी तथा पण्डित रिसालदत्त ज्यौतिषी आदि भी आपके अनेकानेक शिष्यों में से हैं।

आपकी रचनायें:—

१. भास्कराचार्यप्रणीत सिद्धान्तशिरोमणि [लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित और गोलाध्याय] इन चार पुस्तकों में से लीलावती तथा बीजगणित की उपपत्ति तथा टिप्पणी। इसके अतिरिक्त गणिताध्याय और गोलाध्याय के अशुद्ध पाठों का संशोधन आपने किया।

२. सिद्धान्ततत्त्वविवेक—इस ग्रन्थ में भी जो अशुद्धियाँ थीं उनका परिमार्जन कर दिया।

३. म० म० पं० बापूदेव शास्त्री विरचित त्रिकोणमिति नामक ग्रन्थ का अवतरण निर्माण कर नवीन गणित की युक्ति से इस विशेषता के साथ आपने इस कार्य का सम्पादन किया जिससे नवीन गणित के अध्ययन करने वाले छात्रों का महान् उपकार हुआ।

४. शिवस्वरोदय—की भाषा टीका।

५. पटना विश्वविद्यालय की हाईस्कूल परीक्षा में पठ्यत्वेन स्वीकृत 'भारतीय' नामक संकृत पुस्तक का सम्पादन।

प्रश्न

१. म० म० झा जी के पाण्डित्य की समीक्षा संक्षिप्तरूप में लिखिये।

२. म० म० झा जी के रचनात्मक कार्य पर एक टिप्पणी लिखिये।

३. म० म० झा जी की संक्षिप्त जीवनी लिखिये।



वैद्यरत्न पं० ब्रजविहारी चतुर्वेदी

[जन्म वि० सं०१६२६, निधन २००२]

परोपकार को ही अपना व्रत बना लेने वाले महापुरुषों में हमारे चरितनायक श्री चतुर्वेदी जी का स्थान बहुत ऊंचा है। यों तो आप का नाम पं० ब्रजबिहारी चतुर्वेदी ही है परन्तु लोग आप को पटना के चौबेजी के नाम से ही अधिक जानते थे। आपका जन्म बिहार के हाजीपुर नामक स्थान में विक्रम संवत १९२६ में हुआ। सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर आपने अपने कुल और प्रान्त का नाम देश में ऊंचा उठाया।

आप बाल्यकाल से ही कुशाग्रबुद्धि के परिश्रमी बालक थे। पांच वर्ष की अवस्था से आपने विद्यारम्भ किया और कुछ हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद आपको अंग्रेजी पढ़ने के लिए स्कूल में भेजा गया। परन्तु अंग्रेजी में आपका मन नहीं लगा अतः आपको फारसी पढ़ाया जाने लगा। फारसी में आपने अल्प-काल में ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। उपनयन हो जाने के बाद आपको संस्कृत की ओर लगाया गया और पहले पहल आपने पं० रामनारायण मिश्र जी को अपना गुरु बनाया। सिद्धान्तकौमुदी तक यथावत् अध्ययन आपने इन्हीं पण्डित जी से किया। साथ ही साथ न्याय, सांख्य और योग का अध्ययन क्रम चलता रहा। बाद में आपने काशी जाकर रणवीर पाठशाला में पण्डित सीताराम शास्त्री जी से आयुर्वेद का अध्ययन किया और आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त की। छात्रावस्था में आपने अपने अग्रज से अमूल्य सहायता पाई। स्वयं आप अपनी गुरुभक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। आपने पण्डित उमाचरण जी को भी अपना गुरु बनाया।

आयुर्वेद का पूर्ण अध्ययन कर लेने के बाद हाजीपुर में आपने 'रत्नाकर औषधालय' खोला। आपके औषधालय का द्वार अमीर और गरीब के लिए समान रूप से खुला रहता था और यही कारण था कि आपने अल्पकाल में ही उतनी ख्याति प्राप्त कर ली जितनी लोग वृद्धावस्था में भी कठिनाई से प्राप्त कर पाते हैं। आपका त्याग अनुकरणीय और आदर्शभूत था। यहां तक कि आप रोगी की दशा सुनकर मीलों तक पैदल चले जाते थे और उसे देखकर उसका उचित उपचार करते थे।

हाजीपुर में लोक प्रसिद्धि पाने के बाद आपने पटने में भी 'रत्नाकर औषधालय' की शाखा खोली। पटना जैसे केन्द्र में आकर आपकी प्रतिभा और भी बढ़ी और यहीं से आपके भाग्य का सितारा चमका। चिकित्सा प्रणाली की अपूर्व सफलता इसी से ज्ञात होती है कि भारत के दूर प्रान्तों से भी आप के पास रोगी चिकित्सा के लिए आने लगे। आपने अपनी निपुणता से चिकित्सक के रूप में अलौकिक यश प्राप्त किया। स्वतन्त्र वृत्ति से प्रेम होने के कारण ही आपने महामना मालवीय जी के उस आग्रह को भी टाल दिया जिसमें उन्होंने आपका हिन्दूविश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज का अध्यक्ष बनाने की अभिलाषा प्रकट की थी।

आपने कई परोपकारी संस्थाओं की नीव डाली और वैसा करने के लिए अन्य लोगों को भी प्रेरित करते रहे। आपके संस्थापित संस्कृत विद्यालयों में हाजीपुर संस्कृत विद्यालय प्रमुख है। बिहारप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के आप ही जन्मदाता रहे। आजन्म आपने उसका संचालन किया।

आपने एक बार अपनी चिकित्सा से तात्कालिक उपराज्यपाल श्री एस्टिफेन्सन महाशय को रोगमुक्त करके पारिश्रमिक के रूप में पटना में एक राजकीय आयुर्वेदिक विद्यालय की स्थापना की मांग की। आप की इस परोपकार पूर्ण मांग का समर्थन आपके अत्यन्त प्रशंसक तत्कालीन बिहार के मुख्य मन्त्री श्री सर गणेशदत्त सिंह ने भी किया और आप की इस परोपकार एवं त्याग की भावना से वशीभूत होकर उपराज्य पाल ने पटना आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना करा दी। आपने आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना के साथ साथ यूनानी कालेज की स्थापना का समर्थन किया और उसकी स्थापना भी में सहयोग दिया। यह कार्य आपके जीवन की एक अपूर्व उपलब्धि रही है। इसी प्रकार बिहार में भूकम्प के समय आपने बारह हजार रुपए की औषधि निर्मूल्य वितरण करके अपनी परोपकारिता और देशप्रियता का अत्युज्ज्वल परिचय दिया। भारत सरकार ने आप के इन्हीं गुणों से आकृष्ट होकर आपको 'वैद्यरत्न' की सम्मानित उपाधि प्रदान की। सन् १९२६ ई० में आपने अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के लखनऊ अधिवेशन का सभापतित्व भी किया था।

आपकी रचनायें:—

१. शास्त्रतत्त्वेन्दुशेखर । २. शास्त्रतत्त्वरत्न । ३. त्रुटिविवेक ।
४. आयुर्वेदतत्त्वरत्नाकर । ५. मनोविज्ञान । आदि ।

इन ग्रन्थों में 'मनोविज्ञान' सब से प्रौढ़ और दार्शनिक ग्रन्थ है । भारतीय परम्परा यह रही है कि किसी भी क्षेत्र में एक दार्शनिक पृष्ठ भूमि का निर्माण अवश्य होता है । यहां तक कि भारत में आयुर्वेद और शिल्प शास्त्र जैसे विषयों में भी एक दर्शन है । चतुर्वेदी जी ने आयुर्वेद के दार्शनिक पक्ष को 'मनोविज्ञान' में स्पष्ट करने का सराहनीय और सफल प्रयत्न किया है । वस्तुतः आयुर्वेद का दार्शनिक दृष्टिकोण सांख्य दर्शन से बहुत कुछ साम्य रखता है और मानसिक प्रवृत्तियों का रोगों पर प्रभाव किस प्रकार होता है और कैसे इन प्रवृत्तियों की उत्पत्ति और स्थिति होती है यह सब जानना एक सफल वैद्य के लिए आवश्यक है । योग की प्रक्रियाएं और सिद्धान्त इस ओर पूर्ण दृष्टि डालते हैं । चतुर्वेदी जी ने इन्हीं सब बातों की विशद विद्वत्ता पूर्ण व्याख्या इस ग्रन्थ में की है । पण्डितवर श्री बालबोधमिश्र जी ने आपकी दिनचर्या पर एक 'चतुर्वेदिचरित' नामक पुस्तक लिखी है उसके अनुसार यह ज्ञात होता है कि एक वैद्य का क्या जीवन होता है और उस आदर्श का पालन करते हुए अन्य लोग भी कैसे नीरोग रह सकते हैं ।

इस प्रकार लोक सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करते हुए चतुर्वेदी जी ने १९४५ ई० में इस लोक से प्रयाण किया । आपके परिवार में आपके योग्य पुत्र पण्डित हरिनारायण चतुर्वेदी पटना आयुर्वेद कालेज के प्रधानाचार्य हैं और अपने पिता जी के पदचिह्नों पर चलकर दिवंगत आत्मा को आनन्द दे रहे हैं । आपके प्रिय शिष्य श्री पं० कालिकाप्रसाद जी मिश्र भी आयुर्वेद की सेवा में कटिबद्ध हैं ।

प्रश्न

१. चतुर्वेदी जी की लोकसेवा के ऊपर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।
२. चतुर्वेदी जी की संक्षिप्त जीवनी लिखिये ।



महामहोपाध्याय पं० हरिहरकृपालु द्विवेदी

[जन्म वि. सं. १९२७, निधन २००६]

महामहोपाध्याय पं० श्रीहरिहर कृपालुजी द्विवेदी का स्थान भारत के सुप्रसिद्ध संस्कृत के विद्वानों में सम्माननीय रहा है। आप की अप्रतिहत प्रखर प्रतिभा के प्रभापुञ्ज से एक बार सुरभारती पुनः सालंकार जगमगा उठी और भारत की भव्य गुरुता गौरवान्वित हो गई। द्विवेदी जी की विद्वत्तापूर्ण गम्भीर वाग्पटुता के सम्मुख उद्भट विद्वन्मण्डली आश्चर्य चकित होती रही है। साहित्य, व्याकरण, न्याय, वेदान्त, सांख्ययोग आदि दर्शन के पारंगत आचार्य को पाकर संस्कृत स्वयं धन्य हो गई। जिनकी आन्तरिक ज्योति से विहार विशेष रूप से प्रकाशित रहा, उन्हीं के प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा का लोहा मानकर काशी की पण्डितमण्डली उन्हें सदा सम्मलित करती रही। आपके सरल स्नेहपूर्ण शील-स्वभाव की शीतलता में विश्राम लेने में सभी को अपूर्व आनन्दानुभूति होती थी। संस्कृत विद्या का पारङ्गत विद्वान् होने के अतिरिक्त आप में उक्त विद्या के वैधानिक एवं शास्त्रीय अध्ययन के लिए उपयुक्त अनुपम एवं असाधारण गुण भी विद्यमान थे। यही नहीं, संस्कृत साहित्य के विकास की नवीन योजनाओं में भी आपका हाथ प्रमुख रहा करता था। आपके दृढ़ सिद्धान्त और प्रौढ़ पाण्डित्य ने आप को प्रत्येक क्षेत्रों में निर्भय बना दिया था। इस युगपुरुष के संकेतों पर चलने में पण्डितमण्डली को निर्भीकता एवं प्राणवत्ता का अनुभव होता था। काशी निवासकाल में संस्कृत भाषा और साहित्य के जितने भी महत्वपूर्ण कार्य तथा योजनाएँ सम्पन्न हुईं उन सभी में द्विवेदी जी का विशेष योग रहा है। आप काशी की उन गौरवपूर्ण विभूतियों में थे जिनकी महत्ता एवं गुरुता से काशी विश्व-विश्रुत रही है।

जन्म तथा बाल्यकाल:—

सरयूपारीण ब्राह्मणवंशावतंस पण्डितप्रवर द्विवेदी जी का जन्म प्रयाग मण्डलान्तर्गत पण्डितपुर ग्राम में संवत् १९२७ विक्रम की आषाढ़ शुक्ल पञ्चमी को हुआ था। आपके पिता का नाम पण्डित श्री बलभद्रदत्त जी द्विवेदी था और ये बराँव राज्य के राजा महावीरप्रसाद जी की राजसभा के प्रधान पण्डित थे। द्विवेदी जी का बचपन 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की लोकोक्ति को

चरितार्थ करता है। आपकी रुचि खेल-कूद की ओर होती हुई भी अध्ययन की ओर विशेष रूप से थी। आपकी स्मरणशक्ति असाधारण थी। बचपन में द्विवेदी जी अपने साथियों की टोली बनाकर स्वयं राजा बनते तथा मित्रमण्डली को प्रजारूप मानकर राजचक्र चलाया करते थे। एक बार एक ज्योतिषी ने आप को दश श्लोक पढ़ाये और एक दिन बाद ही सुनाने को कहा। बालक द्विवेदी जी की प्रतिभा और स्मरणशक्ति इतना प्रखर थी कि उन्होंने तत्काल ही दसों श्लोकों को कण्ठस्थ ही सुना दिया। ज्योतिषी जी आश्चर्य चकित रह गये। उनकी हस्त-रेखा देखकर ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि यह बालक बेजोड़ विद्वान् होकर सुरभारती को गौरवान्वित करेगा। समय पाकर ज्योतिषी की वाणी सत्य हुई।

शील स्वभाव :—

बचपन से ही द्विवेदी जी का स्वभाव सहज, सरल और स्वाभिमानी था। जीवन के अन्तिम दिनों तक आप में ये गुण विद्यमान रहे। सरलता और सौम्यता की तो आप प्रतिमूर्ति थे। आप की वेशभूषा भी बिलकुल आडम्बर हीन होती थी। पण्डित जी में स्वाभिमान कैसा और किस मात्रा में था यह उनके बचपन की एक घटना से भली भाँति प्रकट है। आपके पिता जिस राजदरबार में रहते थे उन्हीं के कुमारों के साथ आपको भी शिक्षा दी जाने लगी। अल्पकाल में ही आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा के सहारे अंग्रेजी का पाठ बहुत आगे तक तैयार कर लिया। यह सुनकर राजा साहब ने शिक्षक को आदेश किया कि जब तक कुमार भी उतनी ही प्रगति न करलें तब तक द्विवेदी जी का पाठ रुका रहे। इससे द्विवेदी जी के स्वाभिमान में ठेस लगी और वे अपने पिता जी की इच्छा के विरुद्ध गाँव चले आए तथा माता जी से कुछ रुपये लेकर तत्काल अध्ययन के लिए काशी पैदल चल पड़े। घटना छोटी सी कही जा सकती है किन्तु द्विवेदी जी के महान् व्यक्तित्व का परिचय देती है।

काशी और अयोध्या में अध्ययन—

उन दिनों काशी के विशिष्ट पण्डितों के विद्यालय में प्रवेश की कसौटी विद्यार्थी की विलक्षण प्रतिभा तथा अध्ययन की शक्ति ही होती थी। अपनी इन्हीं योग्यताओं के बल पर द्विवेदी जी ने काशी के प्रसिद्ध विद्वान् दशरथ शास्त्री के विद्यालय में प्रवेश पाया। प्रतिभाशाली छात्रों पर गुरु की कृपा अनायास हो जाती

है। उत्तरोत्तर विकासशील द्विवेदी जी के रूप को देखकर ईर्ष्यालु छात्र इनके अध्ययन में बाधा डालने लगे। वे इनकी पुस्तक छिपा देते थे, दीप बुझा देते थे। इन उपद्रवों से ऊबकर द्विवेदी जी अयोध्या चले गये तथा श्री पण्डित चन्द्रभूषण जी की पाठशाला में पण्डित रामाज्ञा जी से व्याकरण शास्त्र में पारंगत हुए। जब ये सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन कर रहे थे, उसी अवसर पर परीक्षा का समय आया। अध्यापकों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सिद्धान्तकौमुदी पढ़ने वाला छात्र सिद्धान्तकौमुदी की परीक्षा के साथ साथ मनोरमा तथा परिभाषेन्दुशेखर की परीक्षाओं में भी सम्मिलित हो रहा है और अध्यापकों के आश्चर्य का ठिकाना तब न रहा जब ये उक्त तीनों परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में भी सर्वप्रथम आए।

व्याकरण पढ़ने के अनन्तर द्विवेदी जी अयोध्या में ही दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित श्री उमापति द्विवेदी जी (नकछेद राम) के विद्यालय में गये। पं० उमापति जी धुरंधर दार्शनिक के साथ-साथ मल्लविद्या में भी प्रवीण थे। शास्त्री जी उस समय 'इदाधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव' का पाठ पढ़ा रहे थे। तीक्ष्ण बुद्धि वाले अनेक छात्र दत्तचित्त हो पढ़ रहे थे। पढ़ाने के बाद शास्त्रीजी ने विद्यार्थियों से तद्विषयक प्रश्न पूछे पर यथार्थ उत्तर न मिलने से खिन्न थे। तदनन्तर द्विवेदी जी ने शास्त्रीजी की आज्ञा लेकर उत्तर देना शुरू किया जिसे सुन शास्त्री जी आश्चर्यचकित हुए और इन्हें अपने विद्यालय में भरती कर लिया। यहीं द्विवेदीजी ने न्याय का पूर्ण अध्ययन किया। एक रात स्वप्न में आपको चिन्तामणि मन्त्र प्राप्त होने का संकेत मिला और दूसरे ही दिन मन्त्र की प्राप्ति भी हो गई। गुरु की कृपा से साङ्गोपाङ्ग विधि समझ कर उन्होंने मन्त्र सिद्ध भी कर लिया।

न्याय और व्याकरण का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् आप पुनः काशी आए। काशी में आपने महामहोपाध्याय पं० राममिश्र शास्त्री जी को अपनी विलक्षण प्रतिभा से प्रसन्न कर वेदान्त अध्ययन की अनुमति प्राप्त की। यहीं स्वर्गीय तर्क-सम्राट् वामाचरण भट्टाचार्य तथा प्रसिद्ध दार्शनिक लक्ष्मणशास्त्री आदि आपके सहपाठी थे। वेदान्त आदि दर्शनों का कुछ मास में अध्ययन पूर्ण कर आपने काशी में ही पण्डितराज श्री शिवकुमार शास्त्रीजी से पाठन-प्रणाली भी सीखी।

सर्वशास्त्र पारङ्गत—

अध्ययन समाप्त कर द्विवेदी जी पिता के आदेश से रीवाँ गये। श्री वेङ्कटेश नारायण के राज्याभिषेक के उपलक्ष में उद्भट विद्वानों के शास्त्रार्थ हुए जिसमें

द्विवेदी जी की विलक्षण शास्त्रीय प्रतिभा के आगे सब नतमस्तक हो गये। प्रसन्न होकर महाराज ने इन्हें विशेपरूप से पुरस्कृत किया। रीवाँ से आप पटना गये और वहाँ अपने पाण्डित्य से विद्वानों को चमत्कृत किया उससे प्रसन्न होकर सेठ मनसुखराय ने आपको वहाँ के प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर विभूषित किया।

आपकी विद्वत्ता एवं पाठन प्रणाली की प्रशस्ति सम्पूर्ण प्रान्त में फैल गई; प्रान्त के कोने कोने से प्रतिभाशाली छात्र पढ़ने आने लगे। धीरे धीरे सम्पूर्ण भारत में आपकी ख्याति फैल गई और सुदूर प्रान्तों से भी विद्वान् छात्र पढ़ने आए और पूर्ण तृप्त होकर गये।

इस समय तक आपकी ख्याति प्रकाण्ड दार्शनिक के रूप में फैल चुकी थी। सन् १९१६ ई० में बिहार-उड़ीसासंकृतसमिति की बैठक मुजफ्फरपुर में हुई। इस बैठक में प्रान्त के सभी उद्भट विद्वान् उपस्थित थे; महामहोपाध्यायों की संख्या भी कम न थी। उक्त बैठक में द्विवेदी जी द्वारा लिखित 'वेदान्तप्रबन्ध' लेख सर्वोत्तम माना गया। सहृदय विद्वानों ने इस लेख की बड़ी प्रशंसा की। इसी अवसर पर वहाँ शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ विचार में भी आपको पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा प्रकाण्ड पाडित्य पर मुग्ध होकर सभाध्यक्ष ने आपको निर्धारित मुद्रा तथा वहुमूल्य दुशाला से पुरस्कृत किया।

द्विवेदीजी की असाधारण प्रतिभा एवं विद्वत्ता की चर्चा पं० मदनमोहन मालवीयजी तक पहुँच चुकी थी और मालवीयजी उन्हें संस्कृत का प्रधान बना कर हिन्दूविश्वविद्यालय में प्रतिष्ठित करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने विशेष प्रयास भी किया। किन्तु विद्यालय के सञ्चालक सेठ रामनिञ्जनदास मुरारका के श्रद्धापूर्ण स्नेह तथा अपनी स्वतन्त्र वृत्ति के कारण द्विवेदीजी वहाँ न जा सके।

संवत् १९७१ वि० में द्विवेदीजी की तर्क-कर्कश विचार-चातुरी देख कर बिहार-पण्डित-सभा ने आपको तर्कालङ्कार पद से विभूषित किया।

संवत् १९७५ तथा १९७६ वि० में आपकी अगाध विद्वत्ता का लोहा मान कर भारतधर्म महामण्डल ने आपको 'विद्यारत्नाकर' तथा 'विद्यानिधि' की उपाधि से सम्मानित किया। बिहार-उड़ीसा संस्कृत एशोसियेशन ने १९७८ में 'प्रधानाचार्य' की तथा संवत् १९७९ में भारत सरकार ने 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से आपको विभूषित किया। अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन ने आपको १९८९ में 'विद्यासागर'

की उपाधि दी। अपने जीवनकाल तक द्विवेदीजी का हिन्दूविश्वविद्यालय से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा तथा वहाँ की संस्कृत-सम्बन्धी-समितियों के आप विशेष सदस्य के रूप में बने रहे।

रचनात्मक प्रतिभा—

महामहोपाध्याय द्विवेदीजी संस्कृत भाषा और साहित्य के साथ साथ हिन्दी भाषा के भी पण्डित थे। यही कारण है कि जो ग्रन्थ संस्कृत में अत्यन्त गूढ़ माने जाते थे और जिनका हिन्दी में रूपान्तर करने में कोई समर्थ नहीं हो सका उन्हें द्विवेदी जी ने सहज ही में हिन्दीरूप दे दिया। बृहदारण्यक वार्तिक-सार (हिन्दी) तथा 'गीता मधुसूदनी' का हिन्दी रूपान्तर ऐसे ही जटिल ग्रन्थ हैं। आपकी अन्य प्रमुख रचनाओं में रमेश्वरकीर्तिकौमुदी (पद्य) तथा शाबर भाष्य पर कल्पलतिका टीका है। इसमें मीमांसाशास्त्र के गूढ़ तत्वों का विवेचन हुआ है। न्यायकुसुमाञ्जलि पर आप की विवेचना अभी अप्रकाशित है।

व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र में तो आपकी गति अबाध थी। आपकी अध्यापन शैली ऐसी विद्वत्तापूर्ण एवं अनोखी थी कि आप से पढ़ने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी तथा कालेजों के अध्यापक आया करते थे। यही कारण था कि उच्च विद्यालय स्थित अध्यापक गण भी अवकाश-काल में शङ्का समाधि और अपूर्व विषय प्राप्ति के लिये आपको घर पर घेरे रहते थे। जब आप 'काशीवास' के लिए विश्वनाथपुरी आए तो यहां भी पण्डित वर्ग को वेदान्तादि विषयों के अध्यापन एवं गहन विषय विवेचन के लिए ही आपने अपना शेष समय व्यतीत किया।

अध्यापन, लेखन के अतिरिक्त आपकी वाक्शक्ति असाधारण थी। संस्कृत सम्बन्धी सभाओं में आप धाराप्रवाह संस्कृत में गर्जना करते थे जिससे अनजान को भी तत्काल आपके अगाध पाण्डित्य पर विस्मय विमुग्ध रह जाना पड़ता था। किसी विद्वान् ने अपने लेख में द्विवेदीजी के विषय में ठीक ही कहा है—

कुमारो वादिविजयी रामस्तीक्ष्णमतिस्तथा।
वाग्मी गंगाधरकविः कृपालौ तु त्रयो गुणाः॥

आपमें अध्यापन, लेखन तथा वाक्शक्ति की पावन त्रिवेणी प्रवाहित होती।

जीवन के उत्तरार्ध में आपने समस्त भारत की यात्रा कर प्रायः सभी प्रसिद्ध तीर्थों के दर्शन किए। काशीवास के अवसर पर आपने संस्कृत भाषा एवं साहित्य की जो सेवाएं की हैं उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। जीवन के अन्तिम

दिनों तक संस्कृत भाषा के लिए श्रम साधना करते रहे और उसके प्रचार-प्रसार के प्रत्येक प्रयत्नों में अपना बहुमूल्य योगदान देते रहे।

युगों के बाद ऐसा प्रतिभा सम्पन्न उद्भट विद्वान् वसुन्धरा पर अवतरित होता है।

सन् १९४९ के मार्च मास में भारत तथा देववाणी का वरद पुत्र इस संसार से चला गया। काशीवास तथा सरस्वती की आराधना करते हुए आपने महाप्रयाण किया।

महाप्रयाण काल में श्री करपात्री जी महाराज अकस्मात् भगवान् विश्वनाथ का दर्शन करते हुये काशीस्थित द्विवेदीजी के वासस्थान पर गये। यहां द्विवेदीजी की शिव-लीनावस्था तथा शोक-सन्तप्त-परिवार की कारुण्य-पूर्ण दशा देखकर स्वामीजी ने सहानुभूति-शब्दों में कहा कि द्विवेदी जी इस समय ध्यानमग्न हैं, अतः शिवाराधन करते हुये कुछ क्षण तक शान्ति बनाये रहें. ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। इनके कथन के कुछ काल बाद शिवाराधन करते हुये आपने प्रयाण किया।

मणिकर्णिकास्थ विष्णुपादुका पर इनका शव संस्कार सभी काशीस्थ पण्डित वर्गों की उपस्थिति में इनके पुत्र द्वारा सम्पन्न हुआ।

आप अपने पीछे एक पुत्र और एक पुत्री दो भ्रातृ पुत्र तथा एक भारी परिवार छोड़ गये हैं। आपका सारा परिवार विद्वान् है तथा सरस्वती की साधना में संलग्न है। आपके सुयोग्य पुत्र पण्डित ब्रह्मदत्त जी द्विवेदी अपने पिता के अनुरूप ही उद्भट विद्वान् निकले। इस समय आप पटना सिटी में सेठ श्री राम-निरञ्जनदास मुरारका संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल हैं। भतीजे पं० श्रीकान्तद्विवेदी इसी संस्कृत कालेज में प्राध्यापक हैं। श्री रमाकान्त द्विवेदी सीतामढ़ी कालेज में अध्यापक हैं।

स्वनाम धन्य श्री द्विवेदीजी अब इस संसार में नहीं हैं किन्तु उनका यशःकाय आज भी विद्यमान है और आगामी युगों तक आपकी तपस्यापूत अमरवाणी, देववाणी के साधकों को प्रेरणा तथा प्रकाश प्रदान करती रहेगी।

प्रश्न

१ महामहोपाध्याय जी के पाण्डित्य का मूल्यांकन कीजिये।

२ „ „ रचनात्मक कार्यों पर एक टिप्पणी लिखिये।

३ „ „ महाप्रयाण के समय का वृत्त लिखिये।

महामहोपाध्याय डा० पं० गङ्गानाथ झा

[जन्म ई० १८७२, निधन १९४१]

दैवात् दो अपरिचितायें, भारतीय संस्कृति और पाश्चात्त्य सभ्यता एकत्र हो गईं। पारस्परिक सौहार्द एवं सम्बन्ध के लिये एक दूसरे का परिचय आवश्यक था। विगत शताब्दी की यही एक समस्या थी। श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानन्द आदि विचारकों ने भारतीय संस्कृति का पाश्चात्त्य भाषा और शैली में परिचय दिया। डा० सर गङ्गानाथ झा जी का नाम इस क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेख्य है। बहुतों ने भारतीय दर्शन एवं धर्म पर लेखनी चलाई। भाषा और अभिव्यञ्जनपद्धति की चारुता से उनका लेखन लोकप्रिय हुआ किन्तु उतना प्रामाणिक न हो सका। डा० गङ्गानाथ झा ने प्राचीन विषयों का परम्परागत अध्ययन किया था और इस लिये वे अधिकारी विद्वान् थे। उनके अनुवाद प्रामाणिक थे। संस्कृतसाहित्य के इतिहास में यह महामहोपाध्याय झा की अपनी विशिष्ट देन है।

महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा का जन्म दरभंगा जिले के सरिसव ग्राम के पाहीटोल में सन् १८७२ ई० में हुआ था। डा० झा पलिवाड़ मूल के मैथिल श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पं० तीर्थनाथ झा और माता का नाम रामकाशी देवी था जो दरभङ्गा के वर्तमान महाराजाधिराज श्री कामेश्वरसिंह जी के वृद्धप्रपितामह महाराज छत्रसिंह जी की पौत्री थीं।

डा० झा के बाल्यावस्था की दो तीन बातें बड़ी मनोरञ्जक हैं। आपको कभी दिग्भ्रान्ति नहीं होती थी। ऐसे अवसरों पर जब बाह्य लक्षणों से दिशा का ज्ञान नहीं हो सकता था तो आप बचपन में अत्यन्त सहज भाव से दिशायें बतला दिया करते थे। इस विषय में शिशु गङ्गानाथ पर इतनी अधिक आस्था हो गई थी कि एक बार नौका द्वारा काशीयात्रा के समय यात्रियों ने आप ही से पूछ कर संध्योपासनादि कार्य किया। आपकी शारीरिक शक्ति बचपन में भी बहुत थी। जिस समय आपकी अवस्था दस वर्ष की थी, महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह ने वैसे ही कुछ विनोद में आपको एक दूनी अवस्था वाला लड़का से लड़ने की आज्ञा दे दी। बालक गङ्गानाथ ने शीघ्र ही उसको कुश्ती में पछाड़ दिया। फिर तो गङ्गानाथ की बन आई। महाराज ने आदेश दिया कि जब तक गङ्गानाथ दरभंगा में रहें उन्हें

प्रतिदिन आधा सेर रसगुल्ला मिले। रोज आधा सेर रसगुल्लों के भोजन ने आपका शरीर स्थूल कर दिया। आप दिन पर दिन मोटे होने लगे। यह देखकर महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह ने इनको आदेश दिया कि स्थूलता कम करने के लिये आप वेदाभ्यास करें। रसगुल्ला खाने का मजा किरकिरा हो गया। एक वृद्ध पुरुष आपके गुरु नियुक्त किये गये। वार्धक्य के कारण गुरु जी कुछ मन्त्रों का स्वर भूल गये थे। गङ्गानाथ ने दूसरों से उन स्थलों को सस्वर पढ़कर दरभङ्गाधिराज से शिकायत की कि वृद्ध गुरु जी से पढ़ना व्यर्थ है। वे तो सब कुछ भूल गये हैं। दरभंगा महाराज कुछ मुस्कराये और गङ्गानाथ ने नीरस वेदाभ्यास से छुट्टी पाई।

सात वर्ष की अवस्था में ही आपका प्रवेश दरभंगा के राज स्कूल में हो गया था। इसी स्कूल से १८ वर्ष की अवस्था में आपने एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। आगे की शिक्षा के लिये दरभङ्गाधिराज ने आपको काशी के क्वींस कॉलेज में भेज दिया। महाराज स्वयं भी क्वींस कॉलेज के स्नातक थे। इसलिये उस कालेज के प्रति उनका विशेष आदर एवं प्रेम था। यहाँ तक कि उन्होंने यह नियम कर दिया था कि जो कोई दरभङ्गा के राजस्कूल से क्वींस कॉलेज में पढ़ने जावेगा उसे दस रुपये प्रतिमास छात्रवृत्ति के रूप में दिये जांयगे।

काशी जाते ही गङ्गानाथ झा की प्रतिभा जगमगा उठी। प्रथम वर्ष के अन्त में ही जो परीक्षा हुई उसमें समस्त युक्तप्रान्त में सर्व प्रथम स्थान आप को प्राप्त हुआ। १८८९ ई० में इण्टरमीडियट की फाइनल परीक्षा में भी आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया। सन् १८९० ई० में आप बी. ए. की परीक्षा में भी सारे विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम आये और आपको दर्शनशास्त्र में आनर्स प्राप्त हुआ।

एम. ए. परीक्षा के लिये आपने संस्कृत साहित्य को ही चुना। बी. ए. परीक्षा में दर्शनशास्त्र में आपने आनर्स प्राप्त किया था अत एव यदि दर्शनशास्त्र में एम. ए. करते तो नियमानुसार आप एक ही वर्ष में सम्पूर्ण एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर सकते थे। किन्तु आपकी अभिरुचि संस्कृत की ओर बढ़ी हुई थी और इसलिये उसी विषय को एम० ए० के लिए चुना। उस समय महामहोपाध्याय पं० जयदेव मिश्र आपके प्रमुख संस्कृतशिक्षक थे। १८९२ ई० में आपने एम. ए. की परीक्षा दी जिसमें आप फिर सर्वप्रथम आये।

एम. ए. की परीक्षा के पश्चात् भी आप महाराज की आज्ञानुसार संस्कृत का

विशेष अध्ययन करते रहे। काशी में रहकर आप म० म० पं० जयदेव मिश्र, म० म० पं० शिवकुमार मिश्र, म० म० पं० गङ्गाधर शास्त्री तथा पं० कैलाशचन्द्र शिरोमणि से संस्कृत का अध्ययन करते रहे।

इसी समय आपका विवाह मिथिला के प्रसिद्ध पण्डित हर्षनाथ झा की कन्या के साथ हो गया। इसके पश्चात् आपका अध्ययन पारिवारिक परिस्थितियों के कारण बहुत दिनों तक न चल सका। आपको दरभंगा लौट जाना पड़ा। महाराज आपकी योग्यता से बहुत प्रभावित थे इसलिये उन्होंने आपकी नियुक्ति दरभंगा राजकीय पुस्तकालय के अध्यक्ष पदपर कर दी। आपकी अध्यक्षता में पुस्तकालय की पूर्ण प्रगति हुई। आपने देश विदेश से पुस्तकें मंगवाकर पुस्तकालय को समृद्ध बनाया। इसी समय आपको मीमांसकमूर्धन्य म० म० पं० चित्रधर मिश्र से मीमांसा पढ़ने का सुयोग प्राप्त हुआ।

डा० झा की लेखन में विशेष अभिरुचि थी। जिस समय झा जी काशी में पढ़ रहे थे उस समय ही इन्होंने निश्चय कर लिया था कि जो प्रतिदिन पढ़ें उसको अंग्रेजी में लिख लिया करें। इसी निश्चय के अनुसार आपने एम. ए. के अध्ययन के साथ ही साथ 'काव्यप्रकाश' और 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' का अनुवाद भी कर डाला था। दरभंगा आने पर भी आपका यह क्रम निरन्तर चलता रहा। आप प्रायः रात्रि के १२ बजे तक लिखते रहते थे। सन् १९२९ में पटना विश्वविद्यालय में 'रामदीन रीडरशिप' लेक्चर देते हुये डा० झा ने कहा था कि मैंने लाखों पेजों के मुँह काले किये हैं। यह बात यथार्थ है। उन्होंने सचमुच ही लाखों पृष्ठों के मुख काले किये थे जिससे करोड़ों भारतीयों के मुख उज्ज्वल हो गये हैं।

महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह जी का देहान्त सन् १८९८ ई० में हुआ। उनके देहावसान से आपका मन दरभंगा से कुछ उचट गया और इसी समय डा० थीबो ने जो आपकी विद्वत्ता से पूर्ण परिचित और प्रभावित थे आपको सेण्ट म्योर कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक पदपर नियुक्त करा दिया। सन् १९०२ के २२ नवम्बर को आपने उस पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया। सोलह वर्ष तक डा० झा सेण्टम्योर कालेज में अध्यापक रहे। १९१८ ई० में आप काशी के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्रिंसिपल नियुक्त हुये। डा० झा ही प्रथम भारतीय विद्वान् थे जिन्होंने इस पद को अलङ्कृत किया था।

प्रयाग में इन्होंने भारतीय दर्शन के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया। इन्होंने

डा० थीबो के सहयोग से १९०८ में Indian Thought नामक भारतीय विचारधारा विषयक त्रैमासिक पत्रिका निकालना आरम्भ किया था। १९१४ में डा० थीबो के चले जाने पर इस पत्रिका का सम्पादन एवं सञ्चालन आप स्वयं करते रहे। इसी पत्रिका में डा० झा ने वात्स्यायनभाष्य के साथ गौतम सूत्र, श्रीहर्ष का खण्डनखण्डखाद्य तथा मधुसूदन सरस्वती की अद्वैतसिद्धि का अनुवाद प्रकाशित किया था।

आपका सम्मान राज्य और विद्वत्समाज दोनों ओर से हुआ। १९०१ ई० की प्रथम जनवरी के उपाधि वितरणोत्सव के अवसर पर डा० झा को भारत सरकार ने महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया था। सन् १९०० में प्रयाग विश्वविद्यालय से आपको इनके प्रवन्ध 'Prabhakara School of Mimansa' (पूर्व मीमांसा में प्रभाकरमत) पर डी. लिट् की उपाधि प्राप्त हुई थी। निर्णायकों में डा० थीवो, म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री और म० म० पं० गङ्गाधर शास्त्री थे। डा० थीवो को छोड़कर अन्य दो अंग्रेजी के ज्ञाता नहीं थे और इसलिये डा० झा को अपने प्रवन्ध का संस्कृत अनुवाद भी करना पड़ा था।

डा० झा के कार्यक्षेत्र विविध थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर नियम निर्माणसमिति में जो पांच व्यक्ति भारत सरकार द्वारा मनोनीत हुये थे उनमें गङ्गानाथ झा भी थे। भारत शासन ने उस समय एक और समिति की स्थापना की थी इस विषय के विचार के लिये कि भारतीय छात्रों के अध्ययन अध्यापन के सम्वन्ध में राजकीय नीति क्या हो? इस समिति में भी डा० गङ्गानाथ झा एक सदस्य थे।

डा० झा भारत शासन द्वारा कौंसिल ऑफ् स्टेट के ई० १९२० से १९२३ तक सदस्य भी मनोनीत हुये थे। किन्तु प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर हो जाने के उपरान्त कार्याधिक्य के कारण आपने पदत्याग कर दिया था। प्रयाग विश्वविद्यालय के आप नौ वर्ष तक वाइस चांसलर रहे। अपने कार्यकाल में आपने प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ाई। विद्यार्थी, प्राध्यापक तथा अधिकारी सब आपसे प्रसन्न थे। साठ वर्ष की अवस्था होने पर आपको एक स्मारक ग्रन्थ समर्पित किया गया था। अवस्था पूरी होने पर जब आपने प्रयाग विश्वविद्यालय का त्याग किया तब सारे अधिकारी, प्राध्यापक और विद्यार्थियों ने अवरुद्ध कण्ठ से विदा देकर आपके प्रति अपने स्नेह और आदर को व्यक्त किया था।

आप प्रयाग विश्वविद्यालय की कोर्ट के आजीवन सदस्य थे। बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी ने आपको 'केम्पबेल मेडल' देकर सम्मानित किया था। रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ लन्दन के—जो विश्व के मान्य विद्वानों की सभा है—आप सदस्य थे।

डा० झा परम आस्तिक थे। परमात्मा में आपका पूर्ण विश्वास तथा पूर्वपुरुषों में पूर्ण श्रद्धा थी। वर्ष में जितने पार्वण श्राद्ध विहित हैं वे सभी आप करते थे। अपने पिता के समान ही आप प्रतिदिन सहस्र गायत्री का जप किया करते थे।

आपकी रचनायें

संस्कृत के टीकात्मक ग्रन्थ—

१. प्रसन्नराघव　　२. न्यायदर्शन

३. मीमांसानुक्रमणी　　४. शाण्डिल्यसूत्र

हिन्दी ग्रन्थ :—

१. न्यायप्रकाश　　२. वैशेषिकदर्शन

३. कविरहस्य—भारतीय साहित्य में अपने ढंग का आलोचनात्मक प्रथम ग्रन्थ है।

४. हिन्दूलॉ।

संस्कृत से अंग्रेजी में अनुवाद :—

१. योगसारसंग्रह　　२. सांख्यतत्त्वकौमुदी

३. काव्यप्रकाश—मम्मटकृत　　४. योगभाष्य

५. छान्दोग्योपनिषद्, शांकरभाष्य　　६. शाबरभाष्य

७. प्रशस्तपादभाष्य　　८. न्यायभाष्य

९. खण्डनखण्डखाद्य　　१०. श्लोकवार्तिक

११. तन्त्रवार्तिक　　१२. काव्यालंकारसूत्र

१३. तर्कभाषा　　१४. तत्त्वसंग्रह

इन ग्रन्थों के अनुवाद के अतिरिक्त आपने कुछ स्वतन्त्र निबन्ध भी लिखे।

१. प्रभाकर स्कूल आफ पूर्वमीमांसा (पूर्वमीमांसा में प्रभाकर की सिद्धान्त) निबन्ध पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट् की उपाधि प्रदान की थी।

२. हिन्दू लॉ इन इट्स सोर्सेज
३. [illegible]
४. [illegible] एण्ड [illegible] द अपलिफ्ट आफ कन्ट्री।

इसके अतिरिक्त आपने मिथिला भाषा में भी वेदान्तदीपक आदि अनेक ग्रन्थ लिखे।

इसप्रकार ऐहिक सर्वविध कार्य सम्पन्न कर १९४१ ई० के १० नवम्बर को तीर्थराज प्रयाग में आपका शरीरावसान हुआ। आपके निधन से भारतवर्ष ने अपना एक अनुपम लाल खो दिया। आपके निधन के बाद लोगों को सन्तोष इसी बात को लेकर हुआ कि आप अपने पीछे पांच धुरन्धर विद्वान् पुत्र मातृभूमि के मस्तक को उन्नत करने के लिए छोड़ गये। उनमें सबसे बड़े डाक्टर भवनाथ झा दरभंगा राज में चीफ मेडिकल अफसर हैं। उनसे छोटे डाक्टर अमरनाथ झा ने अपने पिता के जीवनकाल में ही प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को गौरवान्वित किया। डाक्टर अमरनाथ झा ने अन्तार्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अपने परमपूज्य पिता डाक्टर गंगानाथ झा का स्थान उसी प्रकार ग्रहण किया जिस प्रकार लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले विलायत में अपने पिता 'वृद्धपिट्ट' के प्रधान सचिव का स्थान उनके पुत्र युवा 'पिट्ट' ने प्राप्त किया था। इस प्रकार के भाग्यवान होने का सुअवसर डाक्टर गंगानाथ झा को ही प्राप्त हुआ जिन्होंने अपने जीवन में ही अपने स्थान पर परम सुयोग्य पुत्र डाक्टर अमरनाथ झा को प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद पर आसीन देखकर अपनी आंखो को जुड़ाया।

इसी प्रकार आपके पुत्र पं० विश्वनाथ झा एम० ए० प्रधानाचार्य (प्रिंसिपल) गवर्नमेण्ट ट्रेनिङ्ग कालेज फैजाबाद, पं० विभूतिनाथ झा (बिहार में इस समय कलक्टर हैं) तथा पण्डित आदित्यनाथ झा एम० ए० एल० एल० बी० भी बड़े सुयोग्य पुत्र निकले। ऐसा एक भी पुत्र सौभाग्य का सूचक होता है परन्तु आपके ऐसे पाँच पुत्र हैं। कहा भी गया है—'पुत्रे यशसि तोये च ज्ञायते हृदयं नृणाम्'। 'योग्य पिता के योग्य पुत्र' यह कहावत यहाँ पूर्णतः चरितार्थ होती है।

डा० झा के निधन के पश्चात् आपके सुयोग्य शिष्यों और प्रशंसकों की प्रेरणा से प्रयाग में गङ्गानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट की स्थापना हुई है। इस संस्था के

भवन का शिलान्यास प्रयाग विश्वविद्यालय के सन्निकट अल्फ्रेड पार्क के उत्तर-पूर्व-वर्ती कोण पर तत्कालीन राज्यपाल मारिस हैलैट ने देश के सम्मानित व्यक्तियों की उपस्थिति में १३ फरवरी १९४१ ई० को ११॥ बजे दिन में किया था। इस अवसर पर हैलेट महोदय ने डा० झा का चरित्र-चित्रण करते हुए झा को विश्वविख्यात विद्वान् कहा था। इस संस्था का उद्देश्य ज्ञान की गवेषणा है। इस संस्था से एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है जिसमें अनुसन्धान सम्बन्धी गवेषणात्मक लेख प्रकाशित होते हैं।

प्रश्न

१. डा. झा की अध्ययनावस्था के ऊपर एक टिप्पणी लिखिये।

२. अर्वाचीन इतिहास में डा० झा की महत्ता प्रदर्शित कीजिये।

३. डा० झा की विद्वत्ता तथा उनकी रचनाओं पर एक टिप्पणी लिखिये।



महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मणशास्त्री द्राविड

[जन्म वि० सं० १६३१, निधन १६८८ वि०]

शास्त्रीजी की जन्मभूमि तो काशी ही है किन्तु इनके पिता श्री रामचन्द्र शास्त्री कुम्भकोणम् के निकट त्रिसिनिल्लूर नामक एक साधारण नगरी में रहा करते थे। सरस्वती के स्नेही और उमाकान्त के भक्त, इस ब्राह्मण से लक्ष्मी क्रुद्ध थीं। अपनी नगरी के ये सर्वश्रेष्ठ वैदिक थे अतः अत्यन्त सम्मानित थे किन्तु विश्वनाथ भक्ति ने आपको काशी की ओर आकृष्ट किया। निस्सम्बल भक्त चल पड़ा प्रभु की आराधना के लिये। जो थोड़ी सी सम्पत्ति थी उसको सर्वदा के लिये त्यागकर श्री शास्त्रीजी काशी चले आये। कुम्भकोणम् से काशी तक निस्सम्बल यात्रा दुस्साहस ही थी। दृढ़ भावना और पुण्यनिचय से ही यह साध्य हो सका।

दूर देश में अपरिचित ब्राह्मण, सो भी दरिद्र। इस पर व्रत था अयाचन का। ब्राह्मण ने समझा होगा 'निर्धन के धन राम' अथवा भगवान् को 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' का स्मरण दिलाया होगा। आपके तथा आपके परिवार के व्यक्तियों के कई दिन निराहार बीते। आपको ऐसी कष्ट की अवस्था में, संवत् १९३१ वैक्रम चैत्र शुक्ल एकादशी को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ जिसकी प्रभा से दारिद्र्य का तिमिर तो विनष्ट हुआ ही साथ में कुल भी गौरवान्वित हो उठा।

ऐसे सुलक्षण पुत्र के प्राप्त होते ही शास्त्रीजी के भाग्य ने पलटा खाया। उनका आनन्द दूना हो गया। एक तो पुत्र प्राप्ति हुई तथा घर में अन्न वस्त्र की कमी न रह गई। उनकी निर्धनता क्रमशः क्षीण होने लगी। यों ही कुछ दिन बीत गये अब शास्त्रीजी ने पुत्र को प्रारम्भिक शिक्षा देनी शुरू कर दी। वेदशास्त्र के सफल विद्वान् होने के कारण उन्होंने वेदाध्यापन का भार स्वयं लिया। उन्होंने समग्र यजुर्वेद की शिक्षा उन्हें दी। बाद में ऋग्वेद पढ़ने के लिये वैदिक शिरोमणि गुरुभट्ट के यहां व्यवस्था की गई। पढ़ने और स्मरण रखने में बालक की बुद्धि की प्रखरता देखकर लोगों को दंग रह जाना पड़ता था। जिस ऋचा को वे गुरुमुख से एक बार भी सुन लेते थे उसको एक बार में ही कण्ठस्थ कर लेना इनके लिये साधारण बात थी। इस विषय में आपका चमत्कार असाधारण था।

वेद का विधिवत् अध्ययन समाप्त कर काव्यशास्त्र के विनोद के लिये आप विद्वद्वर पं० श्री कृष्णशास्त्री जी की शरण में पहुंचे। इस समय आपकी अवस्था

चौदह वर्ष की थी। इसी अवस्था में आपके अभिभावकों ने बड़ी उत्कट इच्छा से आपका विवाह महामहोपाध्याय सुब्रह्मण्य शास्त्री के यहाँ सम्पन्न कराया। विवाह हो जाने पर साधारण लोगों में अध्ययनादि की इच्छा कम हो जाती है किन्तु वह संस्कार की शास्त्रीजी में कम न हुई। शास्त्रीजी का विद्याभ्यास बड़े उत्साह एवं परिश्रम के साथ बढ़ता ही गया।

वेद एवं काव्य दोनों विषयों के पक्के पण्डित हो जाने के बाद शास्त्रीजी की उत्कट इच्छा न्याय, वेदान्त आदि विविध दर्शनों के अध्ययन की हुई। प्रतिभावान् तो आप थे ही। थोड़े ही समय में आपने समग्र दर्शनों के ऊपर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। वेदान्त एवं सांख्यशास्त्र का अध्ययन आपने महामहोपाध्याय सुब्रह्मण्यशास्त्री से किया तथा न्यायदर्शन का महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र शिरोमणि से। ये दोनों विद्वान् अपने समय के उद्भट विद्वानों में गिने जाते थे। ये लोग धुरंधर शास्त्रार्थी थे जिनके नाम स्मरण से ही प्रतिपक्षी पण्डितों के दिमाग चक्कर काटने लगते थे। आज के अधिक दार्शनिक इन्हीं विद्वानों की शिष्यपरम्परा में हैं। शास्त्रीजी को इन विद्वानों से अध्ययन करने का यथेष्ट समय प्राप्त हुआ और वे ज्ञान-संचयन में पूर्ण सफल हुये।

शास्त्रीजी सरस्वती देवी के परमोपासक थे। आपने अपनी अनुपम भक्ति के द्वारा आराध्य देवी सरस्वती को वशवर्तिनी बना लिया था। 'अध्ययनकाल में वसन्त पञ्चमी के अवसर पर आप अपनी माताजी से मचल बैठते। मकान की खिड़की पर चढ़ जाते और कहते कि मुझे 'सरस्वती-पूजा' के लिये कुछ पैसे दो नहीं तो मैं नीचे कूद पड़ूंगा। माता का वात्सल्य प्रेम उमड़ आता था, वह अपने प्रिय पुत्र की ऐसी धर्माभिरुचि देखकर मन ही मन नैसर्गिक आनन्द का अनुभव करती थी। धर्ममूर्ति माता-पिता की सन्तति में धर्मानुष्ठान के लिये ऐसी मचल क्यों न हो? माता की आंखों में प्रेमाश्रु छलछला जाते थे और वे अपने प्रिय पुत्र के हाथों को पैसे से भर देती थीं।

आप जैसे अध्ययनव्यसनी थे वैसे ही लेखनकला में भी निपुण थे। शास्त्रीजी ने अपनी प्राचीन पद्धति का अनुकरण कर न्यायदर्शन की समग्र पुस्तकें हाथ से लिख डाली थीं। आपके द्वारा अपने हाथ से लिखी हुई श्रीमद्भागवत की पोथी अभी भी उपलब्ध है। भगवद्भक्त होने के कारण भागवत पर आपका असीम स्नेह था।

शास्त्रीजी प्राचीन होते हुए भी नवीनता से दूर न थे। शास्त्रीय ग्रन्थों के ऊपर ज्यों-ज्यों आपका पूर्ण अधिकार होता गया क्रमशः आप विविध परीक्षाओं में भी बैठते रहे। परिणाम यह हुआ कि आपने अपने अध्ययनकाल में काशिक-राजकीय संस्कृत पाठशाला तथा कलकत्ता संस्कृत कालेज की सारी संस्कृत परीक्षायें पास कर लीं। आपका अध्ययन क्रम चल ही रहा था कि इसी बीच आपके पूज्य-पाद पिताजी ने संन्यास ग्रहण कर लिया। अभी तक आप परिवार के बन्धन से मुक्त थे, पिताजी के संन्यस्त हो जाने पर घर का पूरा बोझ आप के सिर आया। अध्ययन और अध्यापन का योगी जब इन संकुचित कार्यों में आता है तो उसे एक प्रकार की स्वाभाविक पीड़ा होती है। पर शास्त्रीजी स्वभाव से ही गम्भीर थे; वे सभी प्रकार के परिवर्तनों में अपने को अडिग रखते थे। यह उनकी विलक्षण विशेषता थी। इसलिये किसी भी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों से विचलित होना आपने जाना ही नहीं।

आपका विश्वास था कि जो व्यक्ति अपने लिये स्वयं नहीं सोचता उसके लिये भगवान् सोचते हैं। संयोग ऐसा हुआ कि आपको स्वर्गीय महामहोपाध्याय वामाचरणजी के साथ काशी नरेश के दरबार में कविता पाठ करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आपकी कविता बड़ी सरस थी। काशीनरेश ने प्रसन्न होकर आपको छात्रवृत्ति देना स्वीकार कर लिया। शास्त्रीजी को जो कुछ मिला उसी में वे सन्तोष से रहने लगे। क्योंकि वे जानते थे:—'असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः'।

आर्थिक संकट मनुष्य की उन्नति को पहाड़ की भांति रोकते हैं ऐसी स्थिति में मनुष्य बड़ा ही संकीर्ण और निरुत्साह हो जाता है किन्तु शास्त्रीजी के विषय में यह बात बिलकुल नहीं थी। उनकी यह विशेषता थी कि वे निर्धन होते हुये भी विशाल हृदय रखते थे। आप अपनी उदारता के लिये प्रसिद्ध थे। आप अभाव में भी याचक की याचना निष्फल नहीं होने देते थे। आपने प्रत्येक एकादशी को एक भजनाचार्य ब्राह्मण को फलाहार के लिये नियमित रूप से कुछ न कुछ देने का निश्चय कर लिया था।

इस प्रकार शास्त्रीजी का अनुकरणीय एवं आदर्श छात्रजीवन व्यतीत हुआ। छात्रजीवन व्यतीत कर आप समुचित जीविका की प्रतीक्षा में जिस समय लगे थे उसी समय काशी की रणवीर पाठशाला के अधिकारियों का ध्यान आप की

ओर गया और उन लोगों ने १९०२ वि० में अपने विद्यालय में बड़े अनुरोध के साथ आपको नियुक्त किया। उस समय आपकी अवस्था केवल इक्कीस वर्ष की थी। अल्प वयस्क होते हुये भी आप अध्यापन-कला में प्रवीण थे। आपकी अध्यापनकुशलता ने प्रायः समस्त छात्रों को आकृष्ट किया। आगे चलकर अध्यापन में आपकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। यह स्वाभाविक ही है कि जब मनुष्य का भाग्य-परिवर्तन होता है तो विविध दिशाओं से जुट-जुट कर सुख के साधन स्वयं उपस्थित होने लगते हैं। भगवान् विश्वनाथ की प्रेरणा से आपकी सौम्यवृत्ति एवं पाण्डित्य पर मुग्ध होकर १९०८ वि० में महाराज भिनगा ने एक सुन्दर भवन प्रदान कर आपको रहने के स्थान की चिन्ता से भी मुक्त कर दिया।

शास्त्रीजी की विद्वत्ता धर्मपरायणता आदि विशेषतायें ऐसी थी कि कुछ ही दिनों के बाद इनकी कीर्ति भारतवर्ष के कोने-कोने में फैल गई। सारे भारतवर्ष का संस्कृत विद्वत्समाज इनको प्रतिष्ठा की दृष्टि में देखने लगा। जब इनकी विद्वत्ता की चर्चा सुविख्यात विद्वान् सर आशुतोष मुकर्जी के कानों तक गई तो उन्होंने अत्यन्त प्रभावित होकर इनको कलकत्ता कालेज में प्राध्यापक पद के लिये निमंत्रित किया। किन्तु शास्त्रीजी काशी छोड़ कर कलकत्ता जाने के पक्ष में नहीं हुए। इस त्याग से मुकर्जी की श्रद्धा और बढ़ी, उन्होंने शास्त्रीजी को कलकत्ता लिवा लाने के लिये महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषण और महामहोपाध्याय राजेन्द्रनाथ विद्या-भूषण को काशी भेजा किन्तु इतना करने पर भी काशीविश्वनाथ को छोड़ कर शास्त्री जी कलकत्ता नहीं गये।

तदुपरान्त शास्त्रीजी जयपुर में निमन्त्रित किये गये। निमन्त्रण पाकर शास्त्री जी जयपुर जाने के लिये वाध्य हुए। जिस समय आप जयपुर में थे उस समय कलकत्ताकालेज से वहां के अधिकारियों द्वारा भेजा हुआ एक नियुक्ति-पत्र जयपुर पहुंचा। नियुक्ति-पत्र आपके हाथ न पड़कर आपके निकटवर्ती लोगों के हाथ में पड़ा। उन लोगों ने शास्त्रीजी से विना पूछे ही उनके नाम से नियुक्ति-पत्र की स्वीकृति कलकत्ताकालेज के अध्यक्ष के नाम भेज दी। जब इनके कानों में इसकी सूचना पहुँची तब वे वहुत उद्विग्न हुए। परिस्थितिवश इतने बड़े लोगों के द्वारा किये गये वार-वार अनुरोध की अवहेलना करना उन्हें अपनी दृष्टि में खटकने लगा। अन्ततोगत्वा केवल एक मास के लिये कलकत्ता जाने को वाध्य हुए। एक महीने के अन्दर ही कलकत्ता निवासियों ने इनके प्रति इतनी श्रद्धा

दिखलाई और इनका इतना सम्मान किया कि कलकत्ता छोड़कर आना शास्त्रीजी के लिये दुरूह हो गया। बहुत ही कठिनाई से आप काशी आये। यहां भी बड़े-बड़े विद्वान् आपकी शिष्यता ग्रहण कर अपने को कृतार्थ समझने लगे।

काशी में प्राचीन विद्या का परम्परागत प्रणाली से अध्ययन-अध्यापन के लिये आपने रामघाट में साङ्गवेद विद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय में सारे वेद और वेदाङ्गों की पढ़ाई प्राचीन परिपाटी के अनुसार होती है। इसके अतिरिक्त रामघाट में आपके उद्योग से ही श्री छुटकामल गोकुलचन्द आयुर्वेदिक औषधालय स्थापित हुआ।

इसी समय शारदा कानून कौंसिल में स्थापित हुआ। परम्पराप्रेमी शास्त्रीजी ने इसका प्रबल विरोध किया और कानून के स्वीकृत हो जाने पर विरोध रूप में आपने अपनी 'महामहोपाध्याय' की पदवी भी शासन को प्रत्यर्पित कर दी।

अपने विचारों के प्रचार तथा शास्त्रीय मर्यादा स्थिर रखने के अभिप्राय से शास्त्रीजी ने जलगाँव में अखिल भारतीय धर्मसम्मेलन का आवाहन किया। इस सम्मेलन में ही 'वर्णाश्रम स्वराज्य संघ' की स्थापना की गई। शास्त्रीजी के जीवन-काल में ही यह संस्था शक्तिशाली हो गई थी। भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में इसकी शाखायें खुल गई थीं।

इस प्रकार से अनेक कार्यकलापों से व्यस्त जीवन १९८८ वैक्रम में समाप्त हो गया।

आपकी शिष्यपरम्परा में निम्नोक्त नाम उल्लेख्य है:—

१. श्री अक्षयकुमार पञ्चतीर्थ।

२. श्री योगेशचन्द्र तर्कवेदान्ततीर्थ।

३. श्री भाउशास्त्री वझे।

४. श्री सीताराम शास्त्री सांख्याचार्य। इत्यादि।

प्रश्न

१. शास्त्री जी की धार्मिकता पर एक टिप्पणी लिखिए।

२. महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण शास्त्री जी के जीवन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।



सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पं० बालबोध मिश्र

[जन्म वि० सं० १९३४, निधन २००५]

विद्वत्ता के आभूषण से अलंकृत जिन महानुभावों का यशोगान प्रस्तुत इतिहास में निबद्ध किया गया है उन्हीं की श्रेणी में पं० श्री बालबोध मिश्रजी का भी ऊँचा स्थान है। आपका जन्म मुजफ्फरपुर जिले के कोकन ग्राम में १९३४ विक्रम संवत् में हुआ था। आपके परम धार्मिक पितृचरण श्री पं० मुकुन्द मिश्र का देहावसान जब आप बारह वर्ष के थे तभी हो गया। आपका लालन-पालन आपके चाचा श्री ईश्वरीदत्त मिश्रजी ने किया। घर पर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आपने वैयाकरणप्रवर श्री पं० सिंहेश्वर झा जी से व्याकरण का यथावत् अध्ययन किया। प्रौढ़ पाण्डित्य प्राप्त करने की लालसा से विद्यानगरी काशी में आकर पण्डितचक्रचूड़ामणि महामहोपाध्याय श्री गङ्गाधर शास्त्रीजी की सेवा में आपने विद्योपार्जन प्रारम्भ किया। आपने उन्हीं से व्याकरण साहित्य और दर्शनों का प्रौढ़ ज्ञान प्राप्त किया और काशिकराजकीय संस्कृतमहाविद्यालय से आपने व्याकरणाचार्य परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की। आपने महामहोपाध्याय विद्वन्मूर्धन्य श्री शिवकुमार मिश्रजी से भी व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया था। नैयायिकप्रवर श्री पं० जीवनाथ मिश्रजी से न्यायशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर आपने ही सं० कालेज बनारस से सर्वप्रथम न्यायाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की।

अध्ययन समाप्त करके आपने जैन साधुओं को पढ़ाना प्रारम्भ किया। विद्वत्ता की विशेषता से प्रभावित होकर जैनियों ने आपको 'पाटन' बुला लिया। वहां कुछ दिन अध्यापन करके आप अलवर राज्य के शिक्षाध्यक्ष श्री रामभद्र झा जी के विशेष आग्रह से अलवर चले गए और वहां से शीघ्र ही काशी लौट आए। वैद्यराज श्री पं० व्रजबिहारी चतुर्वेदी जी द्वारा संस्थापित हाजीपुर स्थित रत्नाकर विद्यालय में उन्हीं के आग्रह से आपने प्रधानाध्यापक का पद स्वीकार कर लिया। आपकी वास्तविक प्रतिष्ठा यहीं पर हुई। चतुर्वेदी जी के साथ आपका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ हो गया। वस्तुतः आप की यशोवृद्धि में चतुर्वेदी जी का पूर्ण हाथ था। मुजफ्फरपुर में धर्मसमाज संस्कृत कालेज की स्थापना होने पर आप वहां सांख्य-योग के अध्यापक नियुक्त हो गए। दो वर्षों तक मुजफ्फरपुर में अध्यापन करने के बाद १९१९ ई० में आप काशिकराजकीय संस्कृत विद्यालय में वेदान्तमीमांसा

के अध्यापक पद पर नियुक्त गुए । यहां पर रह कर आप वेदान्त और पूर्व मीमांसा का यथावत् अध्यापन कराकर विद्वानों और छात्रों का पूर्ण सन्तोष करते रहे । यहीं से आप की ख्याति प्रौढ़ हुई और संस्कृत के इने गिने विद्वानों में आपका भी नाम लिया जाने लगा । चौबीस वर्षों तक सफल अध्यापक का जीवन व्यतीत कर आपने १९४३ ई० में अवकाश ग्रहण किया । अवकाश ग्रहण करने के बाद भी आप काशी की पाठशालाओं में ज्ञान यज्ञ किया ही करते थे । १९४८ ई० के दिसम्बर मास में आपने इस असार संसार को त्याग दिया ।

यों तो संस्कृत भाषा अगाध है परन्तु इस अगाधता में अनेक रत्न छिपे हैं । वस्तुतः मिश्रजी उन रत्नों में ही थे । सकल शास्त्रों का मार्मिक ज्ञाता होने के साथ आप अद्भुत अध्यापक थे । आपकी अध्यापन शैली निराली थी । मनोवैज्ञानिक पद्धति से आपने जिन विषयों को पढ़ाया उसका परिणाम अद्भुत हुआ । आप अध्यापन के व्यसनी थे और अस्वस्थता में भी आपका अध्यापन नहीं छूटता था ।

शिष्यपरम्परा—

आपने अनेक विद्वान् संस्कृत क्षेत्र को प्रदान किए जिनमें प्रमुख ये हैं—

१. श्री रामभद्र झा एम० ए०, अलवर राज्य के भूतपूर्व शिक्षाध्यक्ष ।
२. श्री लक्ष्मण झा, धर्माध्यक्ष काशीराज्य, रामनगर ।
३. श्री शान्तिप्रसाद शास्त्री, जामनगरंमठाध्यक्ष ।
४. श्री दुर्गादत्त शास्त्री, काशीस्थ मारवाड़ी औषधालयाध्यक्ष ।
५. श्री रामचन्द्र झा, अध्यापक, हरिश्चन्द्र कालेज, बनारस ।

आपकी संस्कृत पद्यरचना बेजोड़ होती थी । वैद्यरत्न श्री ब्रजविहारी चतुर्वेदी जी के वंश तथा उनके चरित का आपने बहुत ही सुललित पद्यों में वर्णन किया है । एक उदाहरण देखिए:—

अयन्तेजोव्यूहः किमधिकसमूहः सुयशसाम् ।
किमाधारः कान्तेः सहजनिजशान्तेरुत परः ॥
विचारस्यागारः किमुत भुवि सारः सुतपसाम् ।
गुणानामाधारः किमु चिरमपारः सुखकरः ॥

—o—

महामहोपाध्याय पं० विद्याधर गौड अग्निहोत्री

[जन्म वि० सं ० १९४३, निधन १९९८ वि०]

काशी के इस धुरन्धर वेदाचार्य के विषय में म. म. हरिहर कृपालु जी का कथन हैः—

वेदवल्ली विलूना सा गता सौहार्दमाधुरी।
विधवा भारती भूता गते विद्याधरे दिवम् ॥

इन पण्डित विद्याधर जी गौड का जन्म संवत् १९४३ वि. पौष कृष्ण त्रयोदशी को अपने मातामह के घर रोहतक जिले में पूठी नाम के एक छोटे से गांव में हुआ था। आपके पिता महामहोपाध्याय पं० प्रभुदत्त जी अग्निहोत्री अपने समय के धुरकाण्ड वैदिक थे। वेदपारङ्गत होते हुये भी व्याकरण आदि शास्त्रों में भी उनकी अच्छी गति थी। समाज में वे बहुत प्रतिष्ठित थे। जातक के सारे संस्कार पिता ने स्वयं किये थे।

वातावरण अनुकूल पाकर स्वाभाविक गुण बढ़ने लगे। वैदिक पिता के यहां वेदविद्या की गूंज तथा अग्निहोत्र की विमल धूमराशि प्रारम्भ से ही आप के जीवन को मुखर और सुरभित करने लगी थी। अपने पिता से वेद तथा विख्यात शास्त्रार्थी महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री जी से महाभाष्यान्त व्याकरण का अध्ययन किया। शीघ्र ही वेदविद्या में पूर्ण निष्णात हो गये। पद, जटा आदि अष्ट विकृतियों में जैसा आपका अभ्यास था वेदार्थ में भी वैसा ही कौशल था। इसके अतिरिक्त, धर्मशास्त्र, मीमांसा और साहित्य में भी आपकी अच्छी गति हो गई थी। व्याकरण में आपकी गति तो चमत्कारिणी थी।

आप सोलह वर्ष की अवस्था में अपने पिता जी के साथ एक यज्ञ में कलकत्ता गये। वहां पर भारत के अनेक विद्वान् एकत्र हुये थे। उनके बीच में बालक विद्याधर ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। विद्वान् मुग्ध हो गये, श्रेष्ठी लुब्ध हो गये। वृद्ध विद्वानों ने आशीर्वाद दिया और श्रेष्ठिवर्ग ने याचना की।

श्रेष्ठीवर्ग की प्रार्थना थी कि पं० विद्याधर जी कलकत्ते में रह कर वहां वेद का अध्यापन करें। पिता की आज्ञा से उस छोटी सी वय में आपने वहां 'विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' में अध्यापन करना प्रारम्भ किया। परन्तु आपका मन वहां पर न लगा और आप पुनः काशी लौट आए।

[illegible] महामना मदनमोहन मालवीय जी के समान गुणग्राहक की दृष्टि से यह आभापूर्ण रत्न कब तक ओझल रह सकता था। शीघ्र ही आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्मविभाग में वेदाध्यापक नियुक्त किये गये। कुछ वर्षों के बाद आप उस विभाग के प्रिंसिपल और डीन आफ् फेकल्टी आफ् थियालाजी भी बनाये गये।

विश्वविद्यालय के अतिरिक्त अन्यान्य विद्यासंस्थाओं से भी आपका घनिष्ट सम्बन्ध रहा। आप अपने समय के सर्वाग्रगण्य वैदिक विद्वान् थे इस लिये वेद के शिक्षण मे सम्बद्ध प्रायः सभी सँस्थाओं को आपका सहयोग इष्ट था। काशी के 'संन्यासी संस्कृत कालेज' के आप अनेक वर्षों तक प्रिंसिपल रहे। गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में भी आप अपराह्न २ बजे के अनन्तर वेदविद्या-पारङ्गत विद्वानों को विशिष्ट शिक्षा दिया करते थे। ज्ञानवापी के निकट श्री [illegible]-नारायण वेदविद्यालय से भी आपका सम्बन्ध था।

वेदाध्यापन के अतिरिक्त वेदप्रचार में भी आप निरत थे। आपने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी के तत्कालीन प्रिंसिपल डा. सर गङ्गानाथ झा से विशेष अनुरोध कर शुक्ल यजुर्वेद का तथा गौरीशङ्कर गोयनका से कह कर काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में शुक्ल यजुर्वेद के अतिरिक्तऋग्वेद, कृष्ण यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का अध्यापन आरम्भ करवाया। हिन्दू विश्वविद्यालय में भी पहले केवल शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन अध्यापन होता था किन्तु बाद में आपके सत्प्रयत्न से चारों वेदों का पठन-पाठन एवं परीक्षण आरम्भ हुआ।

सन् १९२१ में 'वैदिक कर्मकाण्ड मण्डल' की स्थापना कर मूर्च्छित वेदविद्या और वैदिक कर्मकाण्ड को आपने उज्जीवित करने का प्रयत्न किया था। सन् १९३७ में आपने स्वयं अपने पिताजी की स्मृति में 'श्री प्रभुदत्त वेदविद्यालय' की स्थापना की। आपकी वेदनिष्ठा और वेदवैदुष्य से प्रभावित भारत शासन ने आपको 'महामहोपाध्याय' पदवी से विभूषित किया।

आपको प्रारंभ से ही प्रतिष्ठा का वरदहस्त प्राप्त था। आपके चमत्कारपूर्ण सर्वतोमुख वैदुष्य, कर्मकाण्डनैपुण्य, मधुरभाषिता, सदाशयता आदि गुणगणों के कारण राजाओं में, विद्वन्मण्डली में, श्रेष्ठियों में, छात्र सम्प्रदाय में—सर्वत्र ही आपकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा व्याप्त थी। राजों, महाराजों सेठों-साहूकारों के बहु-

संमानपुरस्सर निमन्त्रणों पर आपने अनेक यज्ञ कराए तथा देवालय, वापी, कूप, तडाग आदि की प्रतिष्ठायें करवाईं।

महामहोपाध्यायजी का यह निश्चित मत था कि धर्म ही प्रमुख है, अर्थ गौण है। इसलिये उन्होंने न तो धन की परवाह की और न धनाधिपतियों की ही। महाप्रयाण के समय आपने अपनी चिकित्सा कराना बन्द करा दिया था। विशेष अनुरोध करने पर कहते थे 'औषधं जाह्नवी तोयम्'। बहुतों ने वायु परिवर्तन की सलाह दी किन्तु काशी मरण का ऐसा मोह था कि इस प्रस्ताव पर आप विचार ही नहीं करते थे। अन्त में आपने ५ दिसम्बर १९४१ को प्रातःकाल १०॥ बजे ५५ वर्ष की अवस्था में इस नश्वर शरीर का परित्याग कर शिवसायुज्य प्राप्त किया। आप अपने पीछे पाँच पुत्रों, दो कन्याओं और अनेक पौत्रों से भरा परिवार छोड़ गये हैं।

आपकी विशाल शिष्य परम्परा में प्रधान प्रधान शिष्यों का उल्लेख नीचे किया जाता है:—

१. श्री वंशीधर मिश्र वेदाचार्य, अध्यापक जो० म० गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, काशी।

२. श्री भगवत्प्रसाद मिश्र वेदाचार्य, अध्यापक गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी।

३. श्री विश्वनाथ शास्त्री पाण्डेय वेदाचार्य, अध्यक्ष धर्मविभाग तथा डीन आफ फेकल्टी ऑव् थियॉलॉजी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

४. श्री रमाकान्त झा वेदाचार्य, अध्यापक संस्कृत कालेज, सुल्तानगंज।

५. श्री योगीन्द्र झा वेदाचार्य, अध्यापक संस्कृत कालेज, मुजफ्फरपुर।

६. श्री दामोदर झा वेदाचार्य, अध्यापक राजकीय संस्कृत कालेज, गिद्धौर।

७. पं० दौलतराम शर्मा गौड (चरितनायक के पुत्र) वेदाचार्य, अध्यापक प्रभुदत्त वेदविद्यालय काशी।

८. वेणीराम शर्मा गौड वेदाचार्य (चरितनायक के पुत्र), अध्यापक गोयनका संस्कृत कालेज, काशी।

९. श्री सूर्यनारायण गौड भरद्वाज, वेदाचार्य अध्यापक राजकीय संस्कृत कालेज, जयपुर।

१०. श्री गिरिजाप्रसाद वेदाचार्य, राजपण्डित भिनगाराज्य।

११. स्व० रामजीत द्विवेदी, आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक थे।

१२. स्व० विजयचन्द्र चतुर्वेदी, आप गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस के अध्यापक थे।

१३. स्व० श्री मार्तण्डशास्त्री घोडेकर, आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक थे।

आपकी रचनायें—

'कात्यायन श्रौतसूत्र' पर 'सरला विवृति' तथा आरम्भ में एक लम्बी भूमिका जिसमें ऋग्वेद की शाखा-चरण, सूत्रकार का समय आदि का शास्त्रीय विवेचन है। वैसे ही 'शुल्बसूत्र' पर अपनी विवृति लिखकर उसका यथार्थतः प्रकाशन किया।

धर्मनिबन्धों की परम्परा को आगे बढ़ाते हुये आपने विवाहपद्धति, उपनयन-पद्धति आदि लोकोपयोगी ग्रन्थों की रचना कर जनता का बहुत उपकार किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में प्राचीन ग्रन्थों का समुचित सम्पादन एक अत्यन्त आवश्यकीय कार्य था। इस कार्य के पश्चात् ही शोधकार्य आगे बढ़ सकता था। इस ओर भी आपका ध्यान आकृष्ट हुआ।

आपका हस्तलेख बड़ा ही सुन्दर होता था। आपने अनेक प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ स्वयं की हैं। ये सारी लिपियाँ आपके संग्रह की सम्पन्नता को आज भी व्यक्त कर रही हैं।

प्रश्न

१. म० म० विद्याधर जी और वेद का सम्बन्ध बताइए।

२. महामहोपाध्याय जी की संक्षिप्त जीवनी लिखिये।



महामहोपाध्याय पं० बालकृष्ण मिश्र

[जन्म १८८८ ई०, निधन १९४३]

मिथिला आदि काल से ही सुरभारती का क्रीडास्थल रहा है। महाराज जनक के दरबार में महर्षि याज्ञवल्क्य और अन्य विद्वानों एवं विदुषियों ने दर्शन के वादों से इसे गुंजित किया था। आज भी वह धारा अविच्छिन्न रूप में वह रही है। बीसवीं शताब्दी जैसे संस्कृत के अन्धयुग में भी प्रकाण्ड विद्वानों ने मिथिला के उर्वरप्राङ्गण में अगाध विद्वत्ता से सींचकर शास्त्रीय विचारों को हराभरा रखा है। इन महान् विभूतियों के त्याग और तप का यशोगान करते हुए एक वार विस्मय होता है—उनकी प्रतिभा पर, उनके अदम्य अध्यवसाय और क्षमता पर।

बीसवीं शताब्दी के इसी युग में मिथिला की भूमि से एक तपस्वी तेजस्वी ब्राह्मणकुल में हमारे चरितनायक पं० वालकृष्ण मिश्रजी का जन्म हुआ। आप की वंश-परम्परा विद्वानों की पुरानी खान रही है। आपके पूर्व पुरुषों में स्वनामधन्य पं० शङ्कर मिश्र (चरितनायक पृ. ९) तथा उनके पुत्र पं० अयाची (भवनाथ) मिश्र थे। इसी वंश में आपने १८८८ ई० में जन्म लिया। आप की जन्मभूमि दरभंगा जिले के 'सरिसव' गांव में है। आपके पिता अत्यन्त धार्मिक और उदात्त भावनाओं के श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। परन्तु आपका परिवार निर्धन था और उसी निर्धनता के बीच आपकी तीव्र मेधा का स्फुरण हुआ। बाल्यकाल की, चमत्कारपूर्ण प्रतिभा ने निर्धनता से कठोर संघर्ष किया। परन्तु इस संघर्ष में निर्धनता को हार माननी पड़ी। प्रत्युत आपकी प्रखरता और प्रतिभा परिस्थितियों के थपेड़े से संघर्ष करती हुई तीव्र तीव्रतर और तीव्रतम होती गई। मणि को सान पर चढ़ाने से उसकी आभा और दमक आंखों को चकाचौंध में डाल देती है। आपकी विद्वत्तारूपी मणि ने अपने लिए निर्धनता को ही सान बना लिया। वे अध्यवसाय और साहस से अपना कठोर और दृढ़ कदम बढ़ाते हुए आगे ही बढ़ते गए। लक्ष्य की दृष्टि को आपने सर्वदा अपने साथ रखा।

पहले तो आपने अपने मामा पं० नीलाम्बर झा के यहां प्रारम्भिक शिक्षा पाई। आपके मामाजी उच्चकोटि के नैयायिक गिने जाते थे। परन्तु आप अपने मामा का सहवास अधिक दिनों तक न पा सके। असमय में ही पिताजी की

मृत्यु हो जाने पर आप घर संभालने की गरज से घर लौट आए। परन्तु इससे आपके अध्ययन में विघ्न नहीं आया। आपने अपने ग्राम के समीप में ही रहने वाले पण्डित लोकनाथ झा जी को अपना गुरु बनाया। इन्हीं के चरणों में रहकर आपने नव्यन्याय का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर अन्य शास्त्रों का भी चिन्तन और मनन किया।

छात्रावस्था में आपका व्यवहार विद्यार्थी समाज के लिए आदर्श था। आपके जैसा सच्चरित्र, विनयी और मेधावी छात्र मिलना दुर्लभ है। अध्ययन को ही अपना ध्येय मानकर सर्वतोभावेन संसार का परित्याग करके भगवती सरस्वती की सेवा में दत्तचित्त हो जाना दुर्लभ है परन्तु आपने इसे साकार कर दिखाया। यही कारण था कि आप अध्ययन समाप्त करते-करते एक प्रौढ़ निष्णात तार्किक के रूप में प्रसिद्धि पा चुके थे।

अध्ययन के बाद ही आपने अध्यापन का भार संभाला। महाराज दरभंगा के संस्कृत विद्यालय में आपने न्यायशास्त्र पढ़ाना प्रारम्भ किया। अध्यापकत्व स्वीकार करने के समय आपकी अवस्था केवल बीस वर्ष की ही थी और स्वभावतः आपके कुछ छात्र अवस्था में आपसे भी बड़े थे। परन्तु आपने अपनी मनोवैज्ञानिक पाठनशैली के बल पर सभी को मुग्ध कर लिया था और इसलिए अवस्था की तरुणता कुछ बाधक न हुई। जो कुछ भी आप पढ़ाते थे उसका पूर्ण अभ्यास आपको था और पढ़ाते समय आपको पुस्तक देखने की आवश्यकता नहीं होती थी। संस्कृत भाषा में निबद्ध प्रमुख दार्शनिक और साहित्यिक ग्रन्थ आपको प्रायः कण्ठस्थ थे और साथ ही गाथा सप्तशती जैसे प्राकृत ग्रन्थों का भी आपने अभ्यास कर डाला था।

आपका कदाचित् सबसे विशिष्ट गुण था भाषणशैली का। आप के बोलने की कला की जितनी बड़ाई कीजाय थोड़ी है। नैयायिक शास्त्रार्थों में जब आप दुरूह से दुरूह विषयों को भी साहित्यिक मधुरिमा में घोलकर उडेलते थे तब एक अनजान व्यक्ति भी केवल भाषा के माधुर्य से आकृष्ट होकर ही घंटों सुनता रहता था। शास्त्रार्थ की शैली तर्ककर्कश होती हुई भी शर्करा के समान मधुर थी, पयस्विनी के समान मन्थर होती हुई भी मन्दराचल के समान उत्तुङ्ग और सागर के समान गम्भीर थी। शब्दविन्यास और भाव की भंगिमा आप की भाषा में अनायास

सा[illegible] पा जाती थी। आप चाहे संस्कृत बोलें, या हिन्दी, या मैथिली, भाषा का [illegible] माधुर्य सर्वदा आप में अबाधरूप से विद्यमान रहता था। आप ही जैसे लोगों के लिए कहा जाता है कि 'वाणी उनके वश में थी।'

आपकी प्रतिभा के सच्चे पारखी मिथिलानरेश महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह जी निकले। इन्होंने आपको अध्यापकत्व प्रदान करके गृह के भार से मुक्त कर दिया और इस प्रकार आपको निरन्तर आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया। दरभंगा में रह कर आपने महामहोपाध्याय पं० चित्रधर मिश्र जी के सहवास में न्याय और मीमांसा शास्त्र का दृढ़ अभ्यास किया।

आठ वर्षों तक दरभङ्गा में यशोलाभ करने के बाद धर्मसमाज संस्कृत कालेज की स्थापना के साथ ही आप मुजफ्फरपुर चले गए और वहां पर आपने नौ वर्ष व्यतीत किए। मुजफ्फरपुर में आपको बड़े-बड़े विद्वानों का सहवास मिला। स्वनामधन्य म० म० पं० शशिनाथ झा जी से व्याकरण और दर्शन के प्रचण्ड विद्वान् बच्चाझा से वेदान्त का अध्ययन आपने यहीं किया। यहां पर रह कर आपने अनेक ग्रन्थ भी रचे। वस्तुतः मुजफ्फरपुर से ही आपकी यशःपताका चारों ओर लहराने लगी। भारत के कोने-कोने से छात्रवर्ग आपके पास विद्याध्ययन करने के लिए आने लगे।

इसी काल में मुंगेर जिले के 'खगड़िया' नामक स्थान में एक वृहत् विष्णुयाग का आयोजन हुआ। इस याग में दूर-दूर से प्रकाण्ड विद्वान् लोग साग्रह आमन्त्रित हुए थे। आप भी कृपा करके वहां पहुँच गए थे। विद्वानों का शास्त्रार्थ चला और आप ने उसमें भाग लेकर सबको मुग्ध कर दिया। यहीं पर आपका परिचय महामहोपाध्याय पं० विद्याधर जी गौड़ से हुआ और उन्होंने काशी आकर महामना मालवीयजी से आपकी विद्वत्ता की चर्चा की। मालवीयजी ने तुरन्त आपको बुलवा भेजा और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय में वेदान्तशास्त्र का अध्यापक नियुक्त किया। आपने समुचित सम्मान पाकर विश्वविद्यालय की सेवा प्रारम्भ की और अपनी विद्वत्ता से विश्वविद्यालय के लिए और अपने लिए भी अखण्ड यश का लाभ किया। आपके सद्गुणों और उदात्त वैदुष्य के कारण गुणग्राही मालवीयजी ने आपको संस्कृत महाविद्यालय का अध्यक्ष बना दिया। अन्तिम समय तक आप उस पद की शोभा बढ़ाते रहे।

काशी के निवासकाल में ही आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि मिली और इस उपाधि के समाचार से पंडित समाज ने हर्षित होकर आपका अभिनन्दन किया। इसी समय 'अखिल भारतवर्षीय महामहोपाध्याय सम्मेलन' हुआ और इस सम्मेलन में देश भर के महामहोपाध्यायों ने एकत्र होकर शास्त्रचर्चा में आपकी भूरि भूरि प्रशंसा की। रांची में राज्यपालके संयोजकत्व में हुई विद्वत्सभा में तो आपके अद्भुत पण्डित्य से चमत्कृत होकर राज्यपाल ने उछल कर आपको गले लगा लिया।

आपका व्यवहार सर्वदा मृदु और आदर्श होता था। धर्म के तो आप कट्टर पुजारी थे और सर्वदा आपने धार्मिक जीवन व्यतीत करके ऋषित्व पा लिया था। अद्भुत दैवी तेज से प्रकाशित आपकी भव्य मूर्ति को देखने पर यही मालूम होता था जैसे कोई महापुण्यवान् महर्षि हो। अपनी विद्वत्ता, सच्चारित्र्य और मृदुता के कारण आप आदर्श थे।

आपका अन्तिम समय कष्टमय बीता। यह तो भवितव्यता है और इसे कोई भी टाल नहीं सकता। आपके होनहार सुयोग्य पुत्र पं० लेखदत्त मिश्र को यक्ष्मा हो गया। श्री मिश्रजी इन्हें अपने समान ही विद्वान् बनाना चाहते थे परन्तु असमय में ही काल के क्रूर हाथों ने इन्हें पूज्य पिता की गोद से छीन लिया और उसी के शोक में आप भी स्वयं दो महीने बाद ३१ दिसम्बर १९५२ ई० को इह लीला समाप्त कर भगवान विश्वनाथ की नगरी में ब्रह्मीभूत हो गए। विद्वत्ता के विशाल गगन में चमकता सूर्य अस्त हो गया।

मिश्रजी का सारा जीवन भारत और भारती की सेवा में व्यतीत हुआ। संस्कृत समाज के लिए एक नई प्रेरणा और नया प्रकाश लेकर आप इस भू पर अवतीर्ण हुए थे और अपने अस्तित्व से संस्कृत भाषा, साहित्य और भारतीय दर्शन का जो गौरवोन्नयन आपने किया वह अब असम्भव सा लगता है।

आपकी रचनायें—

मिश्रजी ने टीकात्मक ग्रन्थ ही लिखे हैं। परन्तु एक मौलिक काव्य 'लक्ष्मीश्वरीचरित' भी आपने लिखा। यह काव्य महाराजाधिराज दरभङ्गानरेश लक्ष्मीश्वर सिंहजी की द्वितीय धर्मपत्नी श्रीमती महारानी लक्ष्मीश्वरी देवी का जीवन चरित है। इस काव्य में आपकी सृजनशक्ति और कल्पना का पूर्ण परिचय हो जाता है।

आपके अन्य ग्रन्थ ये हैं:—

२. गौतमसूत्रवृत्ति के ऊपर तात्पर्यविवृति नामक टिप्पणी।

३. 'उभयाभावादिचारकपरिष्कार' की 'प्रकाश' टीका।

४. विद्यापतिपदावली के ऊपर टिप्पणी।

५. राधानयनद्विशती की संस्कृत टीका आदि।

शिष्यगणः—

आपके यश की धवल धारा को अक्षुण्ण रखते हुए आपके अनेक शिष्य भारत के कोने-कोने में विराजमान हैं परन्तु उनमें सब से प्रमुख दो व्यक्ति हैं—

१. पण्डित उआनन्द झा—न्याय और वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् और काशीस्थ रानीचन्द्रावती श्यामा विद्यालय के न्याय शास्त्राध्यापक तथा प्रतिष्ठित गोयनका विद्यालय के वेदान्ताध्यापक।

२. पण्डित गोप्तृनाथ मिश्र—न्यायदर्शन के ओजस्वी विद्वान्। मुजफ्फरपुर के धर्मसमाज संस्कृत कालेज में न्यायशास्त्र के प्राध्यापक।

प्रश्न

१. महामहोपाध्याय जी की विद्वत्ता पर एक टिप्पणी लिखिये।

२. " " संक्षिप्त जीवनी लिखिये।



महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा

अभी कुछ वर्ष पहले ही यदि आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निकट 'सङ्कट-मोचन' मन्दिर वाले मार्ग पर प्रातःकाल पाँच बजे घूमने निकलते तो कड़कड़ाते हुये जाड़े के दिनों में भी सूती बन्दी पहने हाथ में मोटा सा लट्ठ अलात चक्र के समान घुमाते हुये, उच्चस्वर से किसी ग्रन्थ का पाठ करके व्याख्या करते हुये और चारों ओर कुछ त्रस्त और कुछ मुग्ध भाव से भरित विद्यार्थियों से घिरे एक व्यक्ति को पर्यटन करते हुये पाते। यदि अवसर मिलने पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय देखने जाते तो घुटनों तक धोती और बन्दी के ऊपर एक टोप लगाये हुये उसी व्यक्ति को प्रिंसिपल के रूप में कार्य करते हुये पाते। यदि बाजार में वह व्यक्ति आपको मिलता तो आप देखते कि एक हांडी भर अच्छी मिठाई अपने हाथों में रखे हुये उसे खाते हुए चला जा रहा है। इस विलक्षण व्यक्तित्व का परिचय राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के इस कथन से प्राप्त होगाः—'मैं उनको बीसवीं सदी का बेजोड़ विद्वान् मानता हूँ। वे सचमुच इस युग के बृहस्पति थे। खेद है, हम उनका उनके योग्य सम्मान नहीं कर पाये'।

बीसवीं सदी के इस बृहस्पति का नाम था—पं० रामावतार शर्मा। इनका जन्म छपरा में हुआ था। आपके पिता का नाम था श्रीदेवनारायण शर्मा। बाल्यावस्था में ही पिता का देहावसान हो जाने से गृहकार्य का दायित्व भी आपके ऊपर आ गया। धैर्य धारण कर आपने पढ़ना प्रारम्भ किया। पांच वर्ष की अवस्था में अक्षरारम्भ संस्कार किया गया था। आपकी विलक्षण प्रतिभा का उदाहरण बाल्यावस्था से ही मिलने लगा था। अत्यन्त छोटी अवस्था में ही आप संस्कृत की प्रथमा परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। इस परीक्षा में आपको छात्रवृत्ति भी मिली। इसके बाद आपका संस्कृत एवं अंगरेजी दोनों विषयों का अध्ययन साथ ही साथ चलने लगा। सन् १८९७ में आपने साहित्याचार्य परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की। आपने इस परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम पद प्राप्त किया। दूसरे वर्ष ही आपने बी. ए. (आनर्स) परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्याल से उत्तीर्ण की। २४ वर्ष की अवस्था में आपने उसी विश्वविद्यालय से एम. ए. परीक्षा सम्मान के साथ पास कर स्वर्णपदक प्राप्त किया। अध्ययन कार्य समाप्त होते ही काशी के सेण्ट्रल हिन्दू कालेज के अधिका-

रियों ने आपको उक्त कॉलेज में अध्यापनार्थ नियुक्त किया। आपकी अध्यापन–प्रणाली विलक्षण थी। कलकत्ता–विश्वविद्यालय में आप वसु–मल्लिक लेक्चरर भी दो वर्ष तक रहे। इसके बाद आप पटना कालेज में संस्कृत विभाग के प्रधान नियुक्त हुए और यहीं, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय की स्थापना होने पर पं० मदनमोहन मालवीयजी की दृष्टि आप पर पड़ी और उन्होंने आपको ओरियण्टल कालेज के प्रिंसिपल के रूप में विश्वविद्यालय में नियुक्त किया। इस समय आपके वैदुष्य एवं अध्यापन–प्रणाली के वैलक्षण्य की कीर्त्ति दूर दूर तक फैल चुकी थी। अतः आपकी योग्यता से आकृष्ट होकर पटना विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने आपको पुनः अपने यहां बुला लिया। अन्त तक आप इसी पद पर योग्यतापूर्वक कार्य करते रहे।

आप विलक्षण विद्वान् थे। वैदुष्य के साथ ही साथ आपकी आलोचन–क्षमता भी अपूर्व थी। सन् १९१०–१२ के बीच में म. म. पं. गणपति शास्त्री ने भास के अनेक नाटकों का प्रकाशन किया। इसके पूर्व भास का नाम कालिदास, राजशेखर, वाणभट्ट आदि के उल्लेखों से ही ज्ञात था। पं. रामावतार शर्मा ने 'शारदा' पत्रिका में सर्वप्रथम भास के प्राचीन उदाहृत पद्यों के आधार पर गणपति शास्त्री की स्थापनाओं पर सन्देह प्रकट किया था। इस लेख ने एक ऐसा विकार उपस्थित किया कि जिसका आज तक अनेक विद्वानों के प्रयत्नों के होते हुये भी समाधान न हो सका। शिलालेखों के अन्वेषण ने अध्ययन का एक नया पथ प्रशस्त किया। पं० रामावतार शर्मा ने भी इस नवीन दिशा में अपनी महत्त्व पूर्ण देन दी—**'प्रियदर्शिप्रशास्तयः'** लिखकर आपने देवानांप्रिय प्रियदर्शी अशोक के लेखों का संग्रह किया। गायकवाड ओरियण्टल सीरिज में आप एक कोष का सम्पादन कर रहे थे जिसकी भूमिका के रूप में आप कोषों का एक विस्तृत इतिहास प्रस्तुत कर रहे थे। यह ग्रन्थ एक अद्वितीय रत्न होता किन्तु असमय में कालकवलित हो जाने से अधूरा ही रह गया। आपके ग्रन्थ 'यूरोपीय दर्शन' और 'परमार्थ दर्शन' आपकी चिन्तन–शक्ति के व्याख्यात्मक और गवेषणात्मक दोनों पक्षों के अपूर्व निदर्शन हैं। 'यूरोपीय दर्शन' नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हुआ था। 'परमार्थ दर्शन' के विषय में तो यह प्रसिद्ध है कि आप कम्पनी बाग में इस आह्वान के साथ कई दिनों तक बैठे रहे कि कोई भी विद्वान् आकर उनसे इस विषय में शास्त्रार्थ करे। अन्ततः अपने गुरु म. म. पं. गङ्गाधर शास्त्री के अनुरोध से आप

कुछ दिन बाद कम्पनी बाग से उठे। 'मारुतिशतक' की भी कथा है कि जिस समय आप विद्यार्थी थे और म. म. पं. गङ्गाधर शास्त्री से अध्ययन किया करते थे उस समय प्रसङ्गात् एक दिन पं. गङ्गाधर शास्त्री आधुनिक विद्वानों की शक्तिहीनता पर खेद प्रकट करते हुए कहने लगे कि आजकल विशाल महाकाव्यों की कौन कहे शतकों की रचना में समर्थ विद्वान् भी कम ही दिखलाई पड़ते हैं। व्युत्पन्न छात्र रामावतार एक रात्रि में ही 'मारुति शतक' का प्रणयन कर प्रातः काल पं. गङ्गाधर शास्त्री की सेवा में उपस्थित हुये। भाषा की शक्ति, विचारों की प्रौढि, अभिव्यञ्जन की क्षमता एक अल्पवयस्क विद्यार्थी में देखकर शास्त्री जी विस्मित, विमुग्ध और हर्षोत्फुल्ल हो गये।

भारत का वह पुनरुत्थान–काल था। उस समय भारत के प्राचीन गौरव की स्मारक रचनायें एक प्रधान विषय था। शर्मा जी ने संस्कृत में तात्कालिक रुचि-परिष्कार के लिये 'भारतीयमितिवृत्तम्' लिखा। 'मुद्गरदूत' तो मेघदूत का एक सुन्दर पैरोडी है। यह 'सुप्रभात' में प्रकाशित हुआ था। स्थानाभाव से उसके उद्धरण अधिक नहीं दिये जा सकते। उदाहरणार्थ प्रथम श्लोक प्रस्तुत है:—

किं मे पुत्रैर्गुणनिधिरयं तात एवैष पुत्रः
शून्यध्यानैस्तदहमधुना वर्त्तये ब्रह्मचर्यम्।
कश्चिन्मूर्खश्चपलविधवास्नानपूतोदकेषु
स्वान्ते कुर्वन्निति समवसत् कामगिर्याश्रमेषु॥

आपकी विलक्षणताओं के विषय में अनेक कथायें अद्यावधि विद्वत्समाज में प्रचलित हैं। आपके अध्यापन की मनोरमता अभी भी प्राध्यापकों का आदर्श बनी है। आपका अद्वितीय वैदुष्य आज भी विद्वानों का उत्साह वर्धन कर रहा है। आपके अनेक शिष्य अपने शिक्षक की परम्परा को आगे बढ़ाने में यत्नशील हैं।

शिष्यपरम्परा:—

१. पण्डित बलदेव उपाध्याय—काशी हिन्दू विश्वविद्यालयान्तर्गत भारतीविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक। आप उच्चकोटि के विद्वान्, शिक्षक और आलोचक हैं।

२. पं. रामनारायण शर्मा एम. ए. साहित्याचार्य, भूतपूर्व मन्त्री बिहारसंस्कृत-समिति तथा सम्प्रति प्राध्यापक पटना विश्वविद्यालय।

३. पण्डितराज हरिशङ्कर पाण्डेय—आप पटना विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे।

प्रौढाः पण्डिमण्डले बहुविधे वादाहवे जित्वरा
विख्याता अपि वादिनः क्षणमलं स्थातुं न येषां पुरः ।
वाग्देवी सततं यदीयरसनारङ्गस्थले नृत्यति
प्रीत्या यैर्विहिता जनोपकृतयेऽनेके निबन्धा वराः ॥

प्रश्न

१. म. म. पं. रामावतार शर्मा के जीवन पर एक निबन्ध लिखिये ।

२. 'पं. रामावतार शर्मा इस युग के बृहस्पति थे'—पल्लवन कीजिये ।



परिशिष्ट

संस्कृत भाषा को अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में विख्यात करने का श्रेय वस्तुतः उन विदेशी विद्वानों को है जिन्होंने बड़े लगन और परिश्रम से संस्कृत भाषा और उसके कठिन ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन किया और अपना सारा समय भारतीय विषयों की खोज में बिताते रहे। अतः अत्यन्त संक्षिप्त रूप में उनकी चर्चा आवश्यक है।

फ्रेडरिक मैक्समूलर

विदेशी विद्वानों में आपका नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आपका जन्म जर्मनी के डेशो नगर में १८२३ ई० में हुआ और साधारण परिवार में उत्पन्न होने के नाते प्रारम्भिक जीवन बड़ा कष्टमय बीता। परन्तु आप भूत की तरह परिश्रम करते रहे। १९ वर्ष की अवस्था में ही आपको डाक्टर की उपाधि मिल गई। आपने हितोपदेश का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। दिन-दिन भर भूखे रह कर आपने घोर परिश्रम किया और ऋग्वेद का प्रामाणिक संस्करण २००० पृष्ठों में प्रस्तुत किया। सन् १८७३ में आपके ऋग्वेद का छठां और अन्तिम भाग प्रकाशित हुआ। मेघदूत का अंग्रेजी अनुवाद, संस्कृत साहित्य का इतिहास तथा संस्कृत व्याकरण की रचनाएँ भी आपने की। आपने ऋग्वेद का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करा कर भारत-भारती की अपूर्व सेवा की। आप इस कार्य के लिए सर्वदा स्मरण किए जाएँगे।

डा० जे० जी० बूलर

जर्मनी के विख्यात भारतीय विद्याओं के विद्वान् डा० बूलर ने भी संस्कृत साहित्य और समाज का महान् उपकार किया। आपने डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने के बाद अपने गुरु बेनफी के साथ सामवेद का सुन्दर संपादन किया। संस्कृत का प्रगाढ़ ज्ञान प्राप्त करने की लालसा से आप भारत आए और १८६३ ई० में बम्बई के एलिफिन्स्टन कालेज में प्राच्यभाषा के अध्यापक नियुक्त किए गए। आप विलुप्त ग्रन्थों की खोज

करने वाले विभाग के अध्यक्ष थे और फलतः लगभग २॥ हजार ग्रन्थों की खोज की। प्रामाणिक और आलोचनात्मक संस्करण भी आपने बाम्बे संस्कृत सिरीज़ में निकाले। १८७५ ई० में महाकवि बिल्हण का विक्रमाङ्कदेवचरित आपने बड़ी खोजपूर्ण भूमिका के साथ प्रकाशित किया। १८८० ई० में वियना जाकर आपने प्राच्यसंस्था की स्थापना की और भारतीय विद्याओं के अनुसंधान के एक बृहत् विश्वकोश के सम्पादन का आयोजन करके आपने उसके कुछ भाग प्रकाशित भी किए। १८९८ ई० में नावदुर्घटना में आपका देहावसान हो गया।

डाक्टर कीलहार्न

आपने संस्कृत व्याकरण को अपना क्षेत्र चुना। आप जर्मनी के निवासी थे और डा० मैक्समूलर के साथ रहने के कारण आपका संस्कृत के प्रति गहरा अनुराग हो गया। १८६६ ई० में आपने शान्तनवाचार्य कृत फिट्सूत्रों का सम्पादन किया। भारत में आकर आपने परम्परा के अनुसार व्याकरण के ग्रन्थों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया और नागेशभट्ट के परिभाषेन्दुशेखर का सटिप्पण अंग्रेजी अनुवाद भी आपने प्रकाशित किया। पातञ्जलमहाभाष्य का अत्यन्त प्रामाणिक संस्करण भी आपने ही निकाला। अंग्रेजी में स्वतन्त्र संस्कृत व्याकरण की आपने रचना की और व्याकरण सम्बन्धी अनेक निबन्ध भी समय-समय पर आप लिखते रहे। विदेशी विद्वानों में वैयाकरण सचमुच आप ही थे।

आर्थर ए० मैकडानेल और ए० बी० कीथ

संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने वालों में आप दोनों का नाम सबसे पहले लिया जाता है। आप लोगों ने संस्कृत का प्रामाणिक इतिहास बड़े परिश्रम और लगन के साथ प्रस्तुत किया। हो सकता है कि आप लोगों के मत सर्वमान्य न हों फिर भी संस्कृत का इतिहास लिखने के मार्ग को खोल देने का श्रेय तो आप लोगों को ही है।

डाक्टर मैकडानेल का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में सन् १८५४ में हुआ। जर्मनी और आक्सफोर्ड में रहकर आपने अध्ययन किया। बाद में आक्सफोर्ड में ही आप अध्यापक भी हो गए। आपने वैदिक व्याकरण, संस्कृत व्याकरण तथा ऋग्वेद का अनुवाद भी लिखा।

कीथ महाशय का जन्म ब्रिटेन में १८७९ ई० में हुआ । अध्ययन के बाद आपने भाषाविज्ञान को अपना क्षेत्र बनाया । आप एडिनबरा विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान पढ़ाते रहे । आपने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे और सम्पादित किए हैं जिनमें प्रमुख ये हैं:—

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास
२. वेदों और उपनिषदों का धर्म एवं दर्शन
३. भारत और लङ्का में बौद्धदर्शन

आपका सर्वप्रधान ग्रन्थ संस्कृत साहित्य का इतिहास ही है। इसको पढ़ने से मालूम होता है कि आपने कितना परिश्रम किया होगा। संस्कृत नाटकों के ऊपर आपने एक ऐतिहासिक ग्रंथ अलग से भी लिखा है। आप सन् १९४४ ई० में स्वर्ग सिधार गए। संस्कृत समाज आपके ऐतिहासिक खोजों के लिए वस्तुतः ऋणी है।

सर विलियम जोन्स

अंग्रेजों ने भारत पर सफल शासन करने के लिए भारत की सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन और मन्थन आवश्यक समझा। भारत का धर्म, दर्शन, साहित्य सब कुछ संस्कृत भाषा में ही मिलता है। इसलिए उनकी प्रवृत्ति संस्कृत के अध्ययन की ओर हुई। पश्चिम की वैज्ञानिक आलोचनात्मक शैली के साथ भारतीय तार्किक पद्धति का सम्मिश्रण हुआ फलतः एक नया दृष्टिकोण ही उत्पन्न हो गया। तुलनात्मक भाषाविज्ञान की नींव भी पड़ी। इस क्षेत्र में सर विलियम जोन्स का नाम सबसे पहले लेने योग्य है।

आप १७८३ ई० में बंगाल के न्यायाधीश के रूप में भारत आए। ११ वर्षों तक भारत में रहकर आपने भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अनेक कार्य किए। आपने बड़ी कठिनाई और परिश्रम के साथ संस्कृत भाषा सीखी। कोई भी पंडित उस समय आपको म्लेच्छ होने के कारण संस्कृत पढ़ाना स्वीकार नहीं करता था। आपने बहुत कोशिशें कीं और अन्त में आपको एक पण्डित जी (पण्डित रामलोचन जी) संस्कृत पढ़ाने के लिए तैयार हुए। पण्डित जी उग्र स्वभाव के थे अतः बात बात में वे कुछ कटु वचन भी आप के प्रति कह दिया करते थे। इन सारी कठिनाइयों को झेलते हुए भी आपने कालिदास के काव्यों और नाटकों का

सफल अध्ययन किया और बाद में शाकुन्तल का अंग्रेजी अनुवाद भी आपने प्रकाशित किया। इस अनुवाद ने पश्चिम जगत् में तहलका मचा दिया। संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति लोगों की आस्था बढ़ी। मनुस्मृति का अनुवाद करके आपने भारतीयों के व्यवहारशास्त्र (ला) को अंग्रेजी माध्यम से शासकों के लिए उपस्थित कर दिया। हिन्दुओं का शासन और दण्डनिर्णय आदि कार्य इसी अनुवाद के आधार पर शास्त्रीय पद्धति से होने लगे। आपका सबसे महत्व पूर्ण कार्य था १७८४ ई० में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना। इस सोसाइटी ने अनेक अनुपलब्ध अथवा प्रसिद्ध ग्रन्थों को आधुनिक आलोचनात्मक ढंग से प्रकाशित कर संस्कृत समाज और भारतीय संस्कृति का अतुलनीय उपकार किया है। ११ वर्षों तक कार्य करने के बाद ई० १७९४ में आपकी मृत्यु कलकत्ते में हो गई।

